VIGYAN PRAGATI 1961 G.K.V.

विज्ञान प्रगति

VIGYAN PRAGATI

वैशाख 1883 : APR. – MAY, 1961

इस अंक में

THE COUNCIL OF SCIENTIFIC & INDUSTRIAL RESEARCH, NEW DELHI

कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली

विज्ञान प्रगति

विज्ञान प्रगति घरेलू और छोटे उद्योगों में लगे हुए लोगों की आवश्यकताओं को अपने सामने रखता है। वह राष्ट्रभाषा के जरिये से यह बताने का प्रयत्न करता है कि देश भर में फैली कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च की प्रयोगशालाएं और दूसरी अनुसंधान संस्थाएं उनके लिए क्या काम कर रही हैं। विज्ञान प्रगति में छोटे उद्योगों के सम्बन्ध में की गई खोजों के उन चुने हुए नतीजों का संक्षिप्त वर्णन दिया जाएगा जो तुरन्त काम में लाये जा सकेंगे। पेटेण्टों के साहित्य की छानबीन की जाएगी और ऐसी ईजादों और आविष्कारों की सूचना विज्ञान प्रगति में दी जाएगी, जो छोटे उद्योग–धन्धों में लगे हुए लोगों के काम में आ सकती हो। विज्ञान प्रगति छोटे उद्योग–धंधों में लगे हुए लोगों की अड़चनों और कठिनाइयों को समझना चाहता है और उन्हें अपने प्रश्न भेजने का निमन्त्रण देता है। उनके प्रश्नों के उत्तर प्रश्न विशेष के बारे में खोजबीन करने वाली संस्था या खोजबीन करने वाले व्यक्ति से प्राप्त करके दिए जायेंगे। इसमें वैज्ञानिक साहित्य का विमर्श रहेगा। अनुसंधान–केन्द्रों के विषय में सूचनायें रहेंगी, और ऐसी प्रगतियों के समाचार रहेंगे जिनका सम्बन्ध छोटे उद्योग-धंधों से हो। अनुसंधान–समाचार सेवा के लिए विज्ञान प्रगति देश की अनुसंधान संस्थाओं की मदद पर निर्भर है। वह देश में फैले हुए उन संगठनों के सहयोग पर निर्भर है जो वर्षों से घरेलू और छोटे उद्योग–धन्धों की भलाई के लिए काम कर रहे हैं और जो देश के उद्योग के इस बहुत महत्वपूर्ण हिस्से की समस्याओं को बड़ी गहराई के साथ जानते और समझते हैं।

विज्ञान प्रगति

वर्ष 10, अंक 4, वैशाख 1883

विषय सूची

विज्ञान प्रगति' प्रति मास प्रकाशित होता है। कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च, लेखकों के कथनों और मतों के विषय में किसी प्रकार की जिम्मेदारी नहीं लेती। 'विज्ञान प्रगति' में प्रकाशित होने के लिए लेख और विज्ञापन, विमर्श के लिये पुस्तकें, और चंदे आदि की रकम 'विज्ञान प्रगति', पब्लिकेशन्स डायरेक्टोरेट, कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च, रफी मार्ग, नई दिल्ली–1, के पते पर भेजी जानी चाहिये।

प्र. सम्पादक : बी. एन. शास्त्री — स. सम्पादक : रामचन्द्र तिवारी

वार्षिक मूल्य : 5 रुपये — प्रति अंक : 50 नये पैसे

VIGYAN PRAGATI, VOL. 10, NO. 4, APRIL–MAY 1961, Pp. 89-120

चुम्बकीय तरल का उत्पादन और अ-नाशक परख में उसका उपयोग

के. सी. श्रीवास्तव
राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली

भारत के धातु और इंजीनियरी उद्योग को गुण नियंत्रण और अ-नाशक परख के लिये अभी प्रति वर्ष लगभग 8,000 गैलन चुम्बकीय तरल की आवश्यकता होती है जो तीसरी पंचवर्षीय योजना में अनुमानतः 12,000 गैलन हो जायेगी । यह चुम्बकीय तरल विदेशों से मंगाया जाता है । इस लेख में इस तरल को बनाने की जो विधि दी गई है उसे उपयोग करके 8,000 रुपये की पूँजी से 1,000 पौंड माल प्रति मास बनाया जा सकता है । इस माल की कीमत आयात माल के भाव की तुलना में लगभग $\frac{1}{6}$ होगी ।

Production of Magnetic Fluid & Its Use in Non-destructive Testing by K.C. Srivastava, National Physical Laboratory, New Delhi.

The annual requirement of magnetic fluids for non-destructive testing and quality control in metallurgical and engineering industries in India is at present about 8000 gallons and is estimated to increase to 12,000 gal. during the Third Five Year Plan. These fluids had hitherto been entirely imported. With the help of process given in the article, 1,000 lb. of material per month can be prepared with an investment of Rs. 8,000. The cost is estimated to be about 1/6 of the market price of the imported product.

लोहा, इस्पात, निकेल और कोबाल्ट आधारित उन मिश्र धातुओं के माल को, जो काफी मात्रा में चुम्बकीय गुण दर्शाते हैं, अ-नाशक विधि से परखने के लिये चुम्बकीय तरल के कणों के निरीक्षण की रीति सबसे अधिक व्यापक रूप से इस्तेमाल की जाती है । इस विधि का उपयोग करने से दरारों, अपद्रव्यों की उपस्थिति, निर्माण की कमियों तथा थकन के चिह्न जैसे वह ऊपरी तथा भीतरी दोष जो आंखों से अथवा रेडियोग्राफी से नहीं देखे जा सकते, स्पष्ट हो जाते हैं । जो उद्योग चुम्बकीय तरल का उपयोग करते हैं उनमें लोहा और इस्पात, मशीन और औज़ार, रासायनिक, मोटर कार, बाइसिकल, हवाईजहाज, बाल और रोलर बेयरिंग, मोटर और डीज़ल इंजन, छुरी कांटे, पानी के जहाज और रेल सम्मिलित हैं ।

इस विधि से माल को परखने में लाभ ये हैं कि यह बहुत सरल है, इसके नतीजों पर पूरा विश्वास किया जा सकता है, दोषों की प्रकृति का ठीक ज्ञान हो जाता है, इस विधि को बहुत से सामान अथवा अकेली वस्तु को परखने के लिये इस्तेमाल किया जा
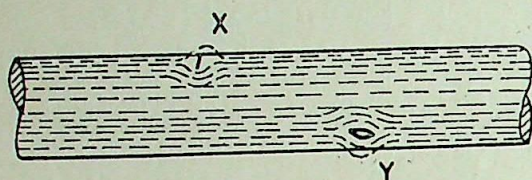
चित्र 1–X पर दरार और Y पर अधात्विक अपद्रव्य के कारण चुम्बकीय बल रेखाओं की विकृति

सकता है। चुम्बकीय तरल सरलता से बनाया जा सकता है और काले, लाल तथा ब्राउन रंगों में प्राप्त किया जा सकता है।

राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला में चुम्बकीय तरल बनाने का जो प्रयोगी उत्पादन संयंत्र लगाया गया है उसमें 100 गैलन से अधिक तरल तैयार किया जा चुका है और कुछ उद्योगों को उपयोग के लिये दिया गया है। उद्योगों ने इसका उपयोग किया है और इसे संतोषजनक पाया है। अनुमाना जाता है कि 1960–1961 तक चुम्बकीय तरल की मांग लगभग 8,000 गैलन और तीसरी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक 12,000 गैलन होगी।

तरल का उपयोग

जिस वस्तु की परीक्षा करनी होती है उसको पहले चुम्बक बनाया जाता है और फिर उसके ऊपर चुम्बकीय तरल लगाया जाता है। यदि वस्तु में दरार अथवा तरेरं उपस्थित होती है तो उसकी दीवारें द्वितीयक चुम्बकीय ध्रुव बन जाती है और तरल के कण आकर्षण के बलों के कारण दोष के क्षेत्र के चारों ओर इकट्ठे हो जाते हैं। इस्पात जैसी उच्च परागम्यता वाली वस्तुओं में एक उपयुक्त क्षेत्र के बल की चुम्बकीय रेखायें माल में होकर गुजरने की प्रवृति रखती हैं। यदि X स्थान पर सतह में दरार होती है अथवा Y स्थान पर (चित्र 1) सतह के निकट कोई अधात्विक अपद्रव्य उपस्थित होता है तो ये चुम्बकीय रेखायें विकृत हो जाती हैं और असमान परागम्यता के कारण उनकी सघनता में अन्तर पड़ जाता है। इससे इन स्थानों पर द्वितीय चुम्बकीय ध्रव दिखाई पड़ जाते हैं[1]।

चुम्बक बनाना–जिस वस्तु को परखना होता है उसे चुम्बक बनाने के लिये विद्युतधारा वाले सोलेनायडों के भीतर रखा जा सकता है अथवा उनमें होकर विद्युत-धारा गुजारी जा सकती है अथवा उन्हें एक विद्युत चुम्बक या स्थायी चुम्बक के ध्रुवों के बीच में रखा जा सकता है अथवा इन रीतियों को किसी प्रकार मिला-जुला काम में लाया जा सकता है[2]। चुम्बक बनाने का काम इस प्रकार किया जाता है कि दोष की जिस दिशा में उपस्थित होने की सम्भावना होती है, चुम्बकीय फ्लक्स की रेखायें उससे समकोण बनाती हैं। बाजार में ऐसे विभिन्न प्रकार के उपकरण मिलते हैं जिनका उपयोग करके चुम्बकीय क्षेत्र को विभिन्न दिशाओं में लगाया जा सकता है। राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला में एक ऐसा स्थानांतरणीय विद्युत चुम्बक (चित्र 2) बनाया गया है जिसकी सहायता से किसी वस्तु में निश्चित स्थान पर निश्चित दिशा में चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न किया जा सकता है। यह उपकरण हल्का और सुगठित है तथा किसी भी आकृति और आकार की
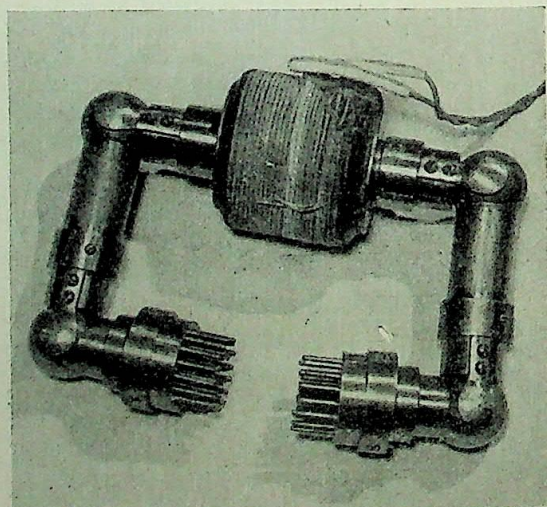
चित्र 2–रा. भौ. प्र. में निर्मित स्थानांतरणीय विद्युत चुम्बक
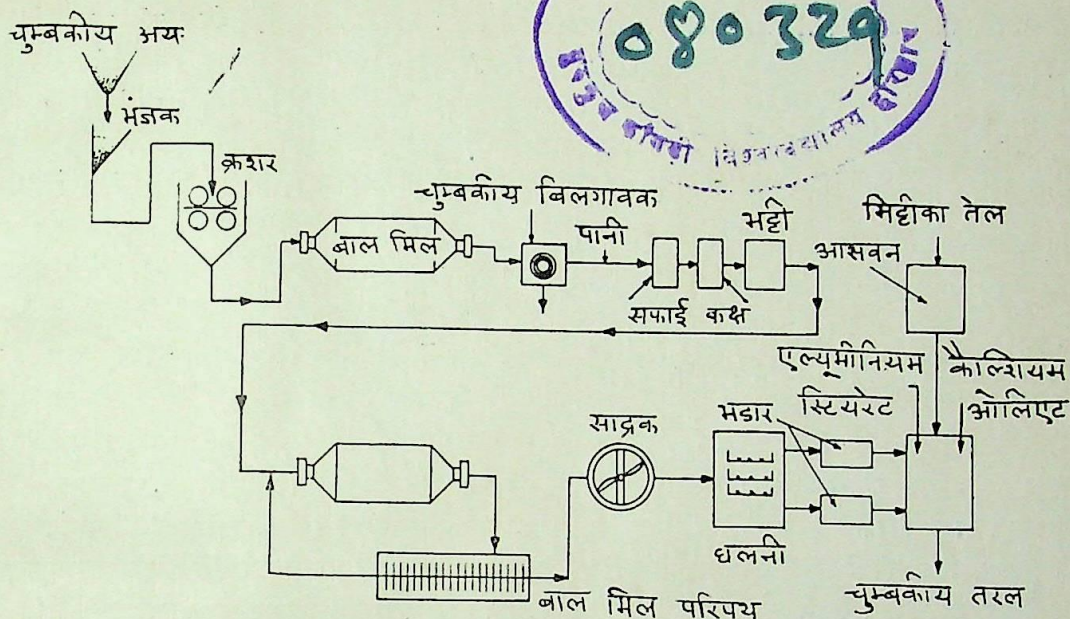
चित्र 3–2000 गैलन प्रति मास चुम्बकीय तरल निर्माण का प्रवाह चित्र

वस्तु को चुम्बक बनाने के लिये इस्तेमाल किया जा सकता है।

चुम्बकीय तरल का उपयोग–चुम्बकीय तरल में जो चुम्बकीय कण होते हैं वे माल पर उस तरह लगाये जाते हैं जिससे कि बहुत जरा–सा दोष भी सामने प्रकट हो जाये। यह काम हिलाये हुये तरल का परखे जाने वाली वस्तु पर ब्रुश से लगा कर, उंडेल कर अथवा छिड़क कर अथवा वस्तु को तरल में डुबा कर किया जा सकता है। तरल ऐसा होना चाहिये कि उससे वस्तु शीघ्र ही भीग जाये और कण सरलता से और जल्दी इधर उधर जा सकें। कणों की चुम्बकीय पारगम्यता ऊंची होनी चाहिये और उन्हें चुम्बकीय रूप से मृदु होना चाहिये। इसका अर्थ यह होता है कि उनके प्रभाव–उत्पादक बल का यथासम्भव कम से कम होना चाहिये—जिससे कि जब उनमें से चुम्बकत्व हटाया जाये तो वे इकट्ठे न हों। औद्योगिक उपयोग के लिये कणों का सर्वोत्तम आकार 3 μ (म्यू) से 6 μ के बीच में होता है[3]। एक म्यू एक मिलीमीटर का $\frac{1}{1000}$ भाग होता है। चुम्बकीय तरल में कणों के बैठने का समय उनके आकार, आकृति और माध्यम के गाढ़ेपन पर निर्भर होता है। ऐसी व्यवस्था कर लेते हैं कि यह लगभग 30 मिनिट हो। यदि बैठने की गति अत्यधिक तेज होती है तो कण मशीन के छेदों में एकत्रित हो सकते हैं। यदि वे बहुत धीरे बैठते हैं तो तरल के साथ बहाये जाने के कारण इस विधि की सम्वेदनशीलता कम हो जाती है। वस्तु की धरातल और कणों के बीच स्पष्टता के लिये अधिकतम अन्तर डालने के विचार से आवश्यकतानुसार लाल, ब्राउन या काले कण काम में लाये जा सकते हैं।

अभी पिछले दिनों तक भारत में चुम्बकीय तरल तैयार नहीं किया जा रहा था। देश की सम्पूर्ण आवश्यकता बाहर से माल मंगा कर पूरी की जाती थी। राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला में इसका निर्माण करने के लिये दो विधियां विकसित की गई हैं। इनका पेटेंट नम्बर 50,574 और 61,774 है। इन विधियों के अनुसार एक प्रयोगी उत्पादन संयंत्र बनाया गया है

और उस पर प्रयोगी पैमाने पर माल तैयार किया गया है।

राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला की विधियां

भारतीय पेटेन्ट नम्बर 50,574 में जिस विधि का वर्णन है उसमें मैग्नेटाइट नामक खनिज, जो भारत में बहुतायत से मिलता है, आरम्भिक माल के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है (चित्र 3)। खनिज को कूटा जाता है और मिट्टी तथा धूल अलग करने के बाद बारीक पीस लिया जाता है। चुम्बकीय बिलगावक की सहायता से अचुम्बकीय पदार्थ अलग कर दिये जाते हैं। लौह आक्साइड के साथ जो कुछ बारीक धूल चिपकी रह जाती है उसको पानी से धो दिया जाता है। शोधित आक्साइड को भट्ठियों में इतना गर्म किया जाता है कि उन्हें आगे पीसने का काम सरल हो जाता है। अन्तिम पिसाई एक बंद–सरकिट बाल मिल में की जाती है। यह मिल प्रयोगशाला में तैयार किये गये नक्शे के अनुसार बनाई गई है। मैग्नेटाइट या लोहे के चुम्बकीय आक्साइड के 6 μ से छोटे कण एक गाढ़ा–करने–की–व्यवस्था में गुजारे जाते हैं। इसमें तरल का आधिक्य अलग हो जाता है और बाल मिल को लौट जाता है। आरम्भ में पानी का द्रव के स्थान पर इस्तेमाल किया गया था पर बाद को मिट्टी का तेल इस काम में लाया गया। यह इसलिये किया गया कि पानी को अलग करने में बहुत देर लगती थी और कभी–कभी लोह आक्साइड के गुठले बन जाते थे। मिट्टी के तेल के इस्तेमाल से यह समस्या सामने नहीं आती। तैयार किया हुआ आक्साइड पात्रों में भंडारित किया जाता है। जब उपयोग के लिये आवश्यकता होती है तो आवश्यक अनुपातों में आक्साइड को मिट्टी
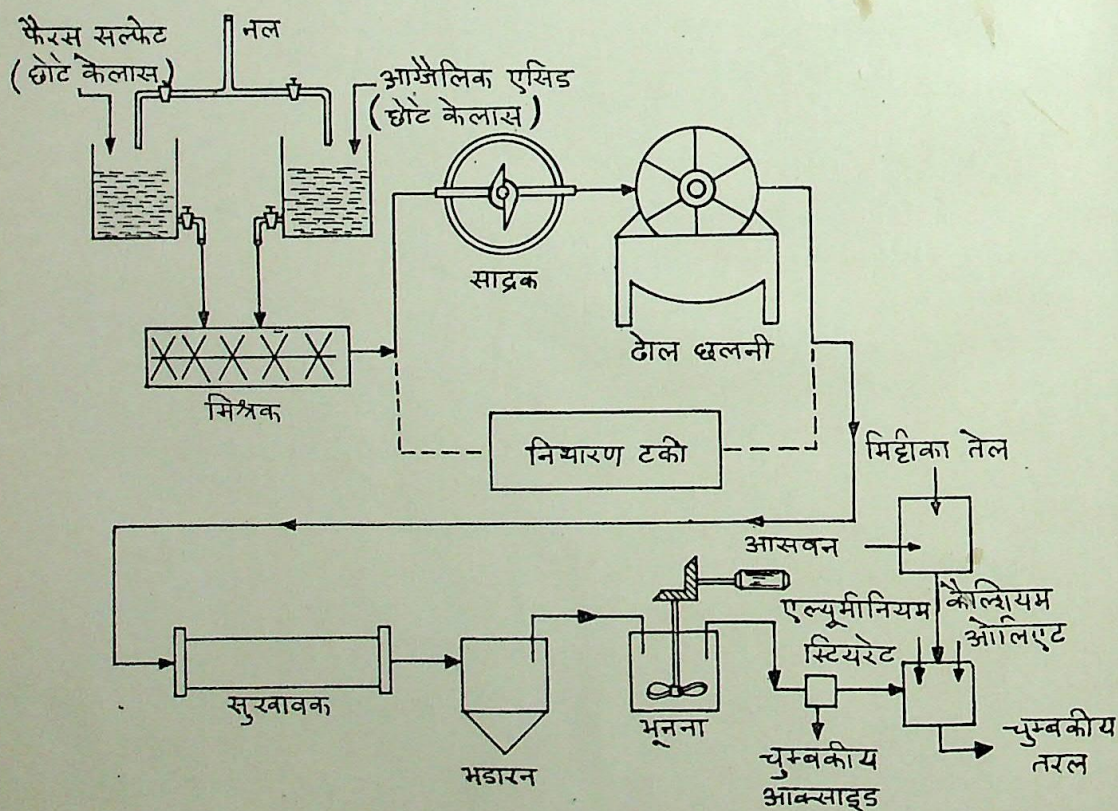
चित्र 4—चुम्बकीय तरल निर्माण का प्रवाह चित्र

के तेल, एल्यूमीनियम स्टियरेट और कैल्शियम ओलियेट के साथ लगभग 16–20 घंटे तक 80–90° सें. पर निरन्तर हिलाते हुए उस समय तक मिलाया जाता है जब तक कि आवश्यक चुम्बकीय तरल तैयार नहीं हो जाता। तरल को अच्छी तरह हिलाया जाता है और फिर परखे जाने वाले पदार्थ पर लगाया जाता है।

इस विधि से 1,000 गैलन चुम्बकीय तरल प्रति मास बनाने के लिये जिस संयंत्र की आवश्यकता होगी उस पर अनुमाना जाता है कि 20,000 रुपये की लागत आयेगी। कच्चे माल का मूल्य बहुत कम होता है पर उपचार की लागत बहुत आती है। सबसे कम लागत केवल उसी समय आयेगी जब प्रति मास लगभग 2,000 गैलन चुम्बकीय तरल तैयार किया जाये। इस स्तर पर चुम्बकीय तरल तैयार करने से प्रति गैलन उत्पादन लागत मोटे तौर से लगभग 9 रुपये पड़ेगी।

चित्र 5–बिजली की मफल भट्टी

दूसरी विधि–चुम्बकीय तरल बनाने की एक दूसरी विधि, जिसका भारतीय पेटेण्ट नं. 61,774 है, भी प्रयोगशाला में विकसित की गई है। यह विधि अपेक्षाकृत सरल और सस्ती है। इसमें देशी फैरस सल्फेट और आक्सैलिक एसिड कच्चे माल के तौर पर इस्तेमाल किये जाते हैं (चित्र 4)। इनको अलग–अलग पानी में घोल कर $\frac{N}{10}$ घोल तैयार कर लिये जाते हैं, उन्हें हल्का–सा गर्म किया जाता है और फर अच्छी तरह मिला दिया जाता है। फैरिस आक्जैलेट का अवक्षेप बनता है। उसको पानी से या तो गाढ़े–करने–की–व्यवस्था द्वारा अथवा ड्रम फिल्टर या निथारने की क्रिया द्वारा अलग कर लेते हैं। आक्ज़ैलेट को 105° सें. पर सुखाते हैं और पात्रों में भण्डारित कर लेते हैं। इसका अब बिजली की मफल भट्टी में (चित्र 5), जिसमें माल को हिलाने की व्यवस्था होती है, 200–250 सें. पर निष्क्रिय वातावरण में गर्म किया जाता है। जब फैरस आक्ज़ैलेट पूर्णतया लोहे के चुम्बकीय आक्साइड में परिवर्तित हो जाता है तो भट्टी को ठण्डा होने दिया जाता है। यह आक्साइड अब चुम्बकीय तरल बनाने के काम में लाया जा सकता है।
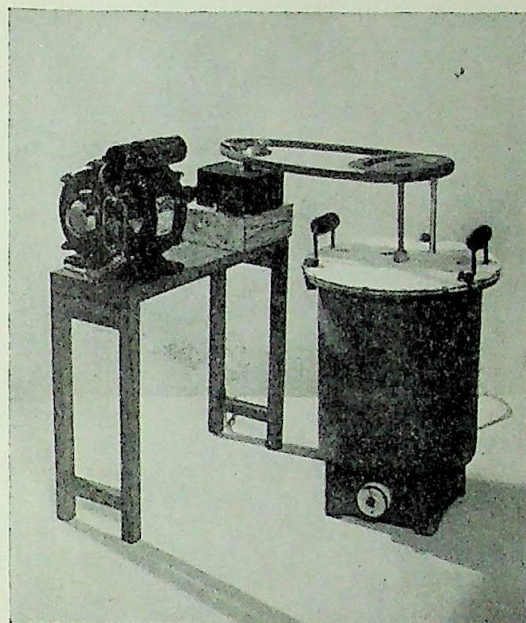
यह विधि सफल रूप से बड़े अथवा छोटे पैमाने पर चुम्बकीय तरल के उत्पादन के लिये काम में लाई जा सकती है। एक ऐसे संयंत्र के लगाने पर जो प्रति मास 1,000 पौंड माल तैयार कर सके केवल 8,000 रुपये की पूंजी लगेगी। इसे चलाने की लागत जिसमें कच्चा माल, मजदूरी, मूल्य ह्रास और नियत खर्चे सम्मिलित हैं 2,600 रुपये आयेगी और लोहे के चुम्बकीय आक्साइड की लागत 2 रुपये 26 नये पैसे प्रति पौंड पड़ेगी। इसके उपयोग से जो चुम्बकीय तरल तैयार होगा उसकी लागत 4 रुपये प्रति गैलन से अधिक नहीं होगी। विदेश से मंगाया हुआ ऐसा तरल इससे लगभग 6 गुने मूल्य पर बिकता है।

इस विधि को ऐसा ही लोहे के दूसरे आक्साइडों के उत्पादन के लिये इस्तेमाल किया जा सकता है। ये आक्साइड कांच धातुओं आदि वस्तुओं पर पालिश

करने के मसाले बनाने के लिये काम में लाये जा सकते हैं।

संदर्भ

1. हिन्सली, जे. एफ., **नान डिस्ट्रक्टिव टैस्टिंग** (मैक्डोनैल्ड एंड इवैन्स लि., लंडन), 1959

2. जैनकिन्स, जे. डब्लू., और विलियम्स, के. डी., **ज. सोसा. नैव. इंजीस, 51** (1945), 166–87.

3. श्रीवास्सव, के. सी. और कदम्बे, वी., **ज. साइं. इंडस्ट्रि. रिसर्च, 14** ए (1955), 249.

थर्मोकपल का ठण्डा जोड़

तत्वदर्शी बन्सल
राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली
प्राप्ति–17 फरवरी 1961

इस लेख में थर्मोकपलों के ठण्डे जोड़ों के लिये ऐसी व्यवस्था का विवरण दिया गया है जिसके उपयोग से थर्मोकपल निश्चित रूप से 0.01 सें. तक की बारीकी से ताप नाप सकते हैं।

Thermocouple Cold Junction by Tatv Darshi Bansal, National Physical Laboratory, New Delhi.

The article describes an arrangement for thermocouple cold junction providing a precision of 0.01° C. in temperature measurement.

विज्ञानशालाओं और कारखानों में ताप नापने के लिये थर्मोकपल व्यवस्था का उपयोग किया जाता है। इस काम के लिये जो उपकरण इस्तेमाल किया जाता है उसे पाइरोमीटर कहते हैं। इसके उपयोग में एक बहुत बड़ी सुविधा यह होती है कि इसे टेढ़े-मेढ़े और मोटे-पतले जटिल स्थानों पर रखा जा सकता है और वहां के ताप को किसी दूर सुविधापूर्ण स्थान पर पढ़ा अथवा अंकित किया जा सकता है। और इन संकेतों के आधार पर ताप को नियंत्रित किया जा सकता है।

थर्मोकपल में दो भिन्न धातुओं अथवा भिन्न मिश्र-धातुओं के दो तार आपस में दोनों सिरों पर जुड़े होते हैं। इन दोनों जोड़ों के तापों में यदि अन्तर होता है तो उससे इस व्यवस्था में एक विद्युतधारा उत्पन्न हो जाती है। जोड़ों के तापान्तर से इस विद्युतधारा का एक निश्चित संबंध होता है, इसलिये विद्युतधारा के द्वारा सीधे ही ताप को नापा जा सकता है। विभिन्न प्रकार के तारों का उपयोग करके ऐसे थर्मोकपल काम में आ रहे हैं जिनकी सहायता से लगभग 20° K (−253° सें.) से 2100° K

(1827° सैं.) तक के ताप बड़ी अच्छी तरह से नापे जा सकते हैं। ऐसे थर्मोकपल भी तैयार किये जा चुके हैं जिनका उपयोग करके लगभग 2500° K (2227° सैं.) तक का ताप नापा जा सकता है।

क्योंकि थर्मोकपल वास्तव में अपने दोनों जोड़ों के ताप के अन्तर को नापता है इसलिये यह आवश्यक होता है कि उसके एक जोड़ का ताप स्थिर रखा जाये और दूसरा जोड़ उस स्थान पर हो जहां का ताप नापा जा रहा है। यह पहला जोड़ जो स्थिर ताप पर रहता है थर्मोकपल का ठण्डा जोड़ कहलाता है।

प्रचलित विधियां

थर्मोकपल के ठण्डे जोड़ को स्थिर ताप पर रखने के लिये आवश्यकतानुसार विभिन्न उपाय काम में लाये जाते हैं। साधारण कारखानों में ठण्डे सिरे के दोनों तारों को विद्युतमापक उपकरण के दोनों सिरों से बांध दिया जाता है। क्योंकि ये दोनों सिरे कमरे के एक ही ताप पर रहते हैं और यह मान लिया जाता है कि कमरे का ताप स्थिर सा ही होता है, इसलिये इसी आधार पर ताप का हिसाब लगा लिया जाता है।

कुछ इंजीनियर कपल के ठण्डे सिरे को एक मोटे लोहे के सिलेण्डर में तेल में डाले रखते हैं। यह सिलैण्डर कहीं छाया में रखा रहता है। कुछ लोग इस ठण्डे जोड़ को ऐसी व्यवस्था में रखते हैं जिसका ताप स्थिर रखने का प्रबन्ध किया जाता है। साधारणतया पाइरोमीटर के टर्मिनल ही ठण्डा जोड़ बन जाते हैं। कुछ पाइरोमीटरों में एक द्विधात्विक स्प्रिंग लगा दिया जाता है, जो कमरे के ताप में घट–बढ़ जाने से सुई के शून्य स्थान को अपने आप बदल कर इसके द्वारा उपकरण में आने वाली अशुद्धि को निरन्तर शुद्ध करता रहता है। इस विवरण से यह स्पष्ट है कि इस प्रकार तापमापन की शुद्धता मुख्यरूप से इस बात पर निर्भर होती है कि ठण्डे सिरे का ताप कितनी बारीकी से स्थिर रखा जाता है।

साधारण उपयोगों में अक्सर 10° सैं. के अन्तर से कोई हानि नहीं पहुंचती। इसलिये ऊपर लिखी विधियों से काम चल जाता है। मापन की सूक्ष्म शुद्धता के लिये ठण्डे जोड़ को आइस प्वाइन्ट सैल में रखा जाता है। पिछले दिनों से पानी के ट्रिपिल प्वाइन्ट सैल का उपयोग भी होने लगा है। इन सूक्ष्मतापूर्ण उपयोगों में एक रीति तो यह है कि थर्मोकपल के ठण्डे जोड़ पर रंग या लैकर करते हैं अथवा प्लास्टिक की पतली तह चढ़ाते हैं और फिर उसे ऐसा ही बर्फ में दबा देते हैं। इस विधि में दोष यह है कि लैकर या प्लास्टिक की तह यदि तनिक भी टूट जाती है तो बर्फ में दूसरे अपद्रव्य मौजूद होने के कारण स्थानीय क्रिया की सम्भावना रहती है, जिससे विद्युतधारा उत्पन्न हो सकती है। इसके अतिरिक्त यदि कई थर्मोकपलों के ठण्डे सिरे एक ही बर्तन में रखे हों तो उनके बीच आपस में बिजली प्रवाहित हो सकती है। कुछ दशाओं में यह हानिकारक भी होता है।

एक रीति यह है कि एक पतली लम्बी कांच की टैस्ट ट्यूब में जोड़ को तली तक पहुंचाने के बाद नली में ग्लास वूल आदि भर दिया जाता है। यदि तारों का सिरा नली की दीवार या तली को दूर तक अच्छी तरह स्पर्श नहीं करता तो नली और जोड़ के बीच ताप अनिश्चित रूप से ढलता जाता है[1]। यह पाया गया है कि कभी कभी एक ही पात्र में पड़े हुये ठण्डे जोड़ों वाले थर्मोकपल विभिन्न ताप दर्शाते हैं। इस कठिनाई को दूर करने के लिये तारों को बार बार ऊपर नीचे हिला–जुला कर उन्हें नली से स्पर्श कराते रहना पड़ता है। अधिक बारीक काम में ऐसा करते रहना बहुत कठिन होता है।

एक रीति यह भी है कि नली में पारा डाल कर उसमें ठण्डा जोड़ रखते हैं और नली को एक पात्र में रख देते हैं। पारे की ऊष्माधारिता काफी होती है इसलिये ऐसे उपयोगों में थर्मोकपल को ठीक ताप दर्शाने में कुछ समय लग जाता है अक्सर बहुत सावधानियां बरतने पर भी तारों पर पारे की तह
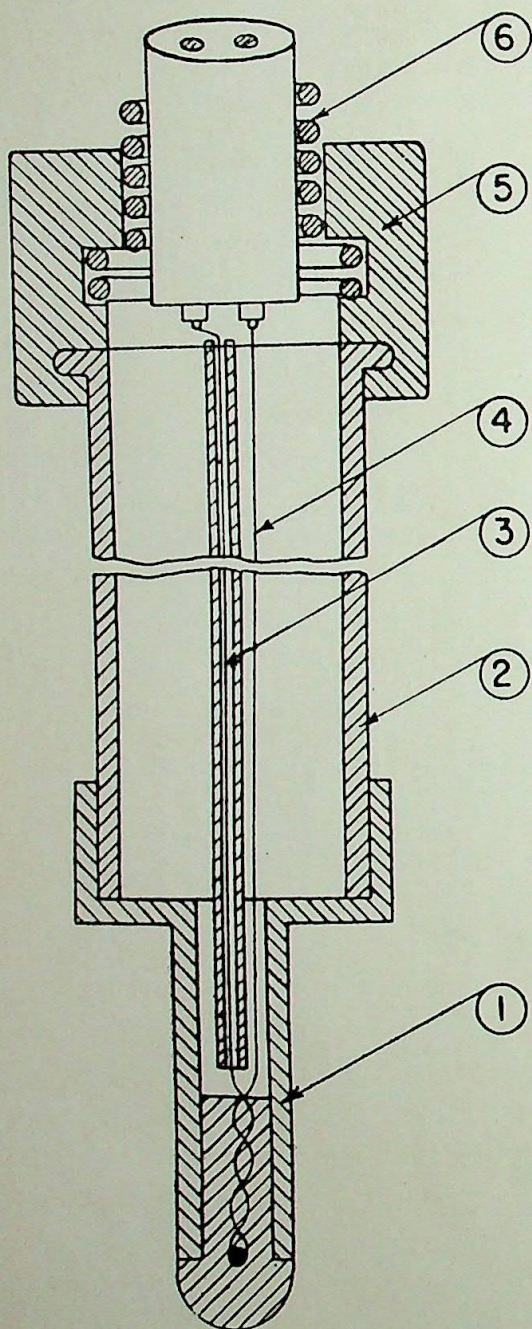
चित्र 1—थर्मोकपल का ठंडा जोड़

चढ़ जाती है और दोनों में से यदि किसी में अपद्रव्य उपस्थित होते हैं तो स्थानीय विद्युत धारा चल निकलने की सम्भावना होती है। क्योंकि पारा हिलाया नहीं जाता, इसलिये उसमें भी ताप अनिश्चित रूप से ढलता जाता है। यदि ठण्डे सिरे को एक पतली सी धातु की टैस्ट ट्यूब में रख दें या पीतल से झाल दें तो वह धातु कमरे की उष्मा को अन्दर ले जाती है और इस प्रकार स्वयं उस नली पर ताप का ढलान स्थापित हो जाता है।

नई विधि

ऊपर लिखी कठिनाइयों से बचने के लिये लेखक जिस प्रकार के ठण्डे जोड़ का उपयोग करता है वह चित्र 1 में दिया गया है। इस प्रकार का जोड़ किसी भी प्रयोगशाला में सरलता से बनाया जा सकता है। इसकी सहायता से ताप को 0.01° सैं. तक की सूक्ष्मता से सरलता से नापा जा सकता है। इस प्रकार के ठण्डे जोड़ पिछले वर्षों में कई प्रयोगशालाओं में इस्तेमाल किये जाने लगे हैं।

इस ठण्डे जोड़ का मुख्य रचक धातु का एक निपिल है। इसे बनाने की कई रीतियां चित्र 2 में दिखाई हैं। यह निपिल तांबे, फास्फर ब्रान्ज़ और स्टेनलैस स्टील का बनाया जा सकता है। ये सभी धातुयें एक सी उपयोगी साबित हुई हैं। चित्र 2 अ में रिड्यूसिंग साकेट जैसी एक वस्तु खराद पर बनाई गई है। इसका फैरुल, फ, और साकेट, स, एक ही नली के बने हैं। फैरुल का छेद इतना चौड़ा होना चाहिये कि कपल के दोनों तार इन्सूलेशन सहित उसमें आसानी से आ जायें। फैरुल की लम्बाई तारों की मोटाई से 10–20 गुनी होनी चाहिये। आमतौर से प्रयोगशाला में 0.5 मिलीमीटर से मोटे तार नहीं होते, इसलिये फैरूल का बाहरी व्यास 3–4 मिलीमीटर, छेद 2–3 मिलीमीटर और लम्बाई 15–20 मिलीमीटर काफी होती है। साकेट इससे कुछ बड़ा, मान लीजिये, 10 मिलीमीटर व्यास का और 10 मिलीमीटर ऊंचा होता है।

चित्र 2 आ में इस निपिल के फैरुल और साकेट को खराद पर अलग अलग बनाया गया है। फैरुल के

सिरे के पास एक कन्नी है जिस पर साकेट को बैठा कर फैरुल के सिरों को फैला दिया गया है। चित्र 2 इ में फैरुल और साकेट एक दूसरे पर सरकने वाली दो नलियां हैं। इनके मुंह जरा ऊपर नीचे चढ़ा कर दोनों में टांका लगा दिया गया है। चित्र 2 ई में रेडियो रिसीवर के वाल्व के पिन को फैरुल के लिये काम में लाया गया है। उसके ऊपर एक ढीली ढाली नली साकेट के तौर पर रख कर टांका लगा दिया गया है। इस विवरण से यह स्पष्ट है कि सुविधा और सूझ के अनुसार यह निपिल तरह तरह से बनाया जा सकता है।

इस संबंध में शायद एक ही आवश्यक सावधानी यह है कि फैरुल की नली में जोड़ नहीं होना चाहिये।

चित्र 1 में पूरा ठण्डा जोड़ दिखाया गया है। इसमें निपिल 1 साकेट में कठोर प्लास्टिक या कांच की नली 2 को चपड़े, ड्योरोफिक्स या लिथार्ज तथा अलसी के तेल की सीमेन्ट से जमा दिया गया है। नली के ऊपर के सिरे को थोड़ा बाहर को बढ़ा कर उसे और एक स्प्रिंग 6 को, बेकेलाइट अथवा इबोनाइल अथवा लकड़ी के विभाजित साकेट 5 में इस प्रकार बांध दिया
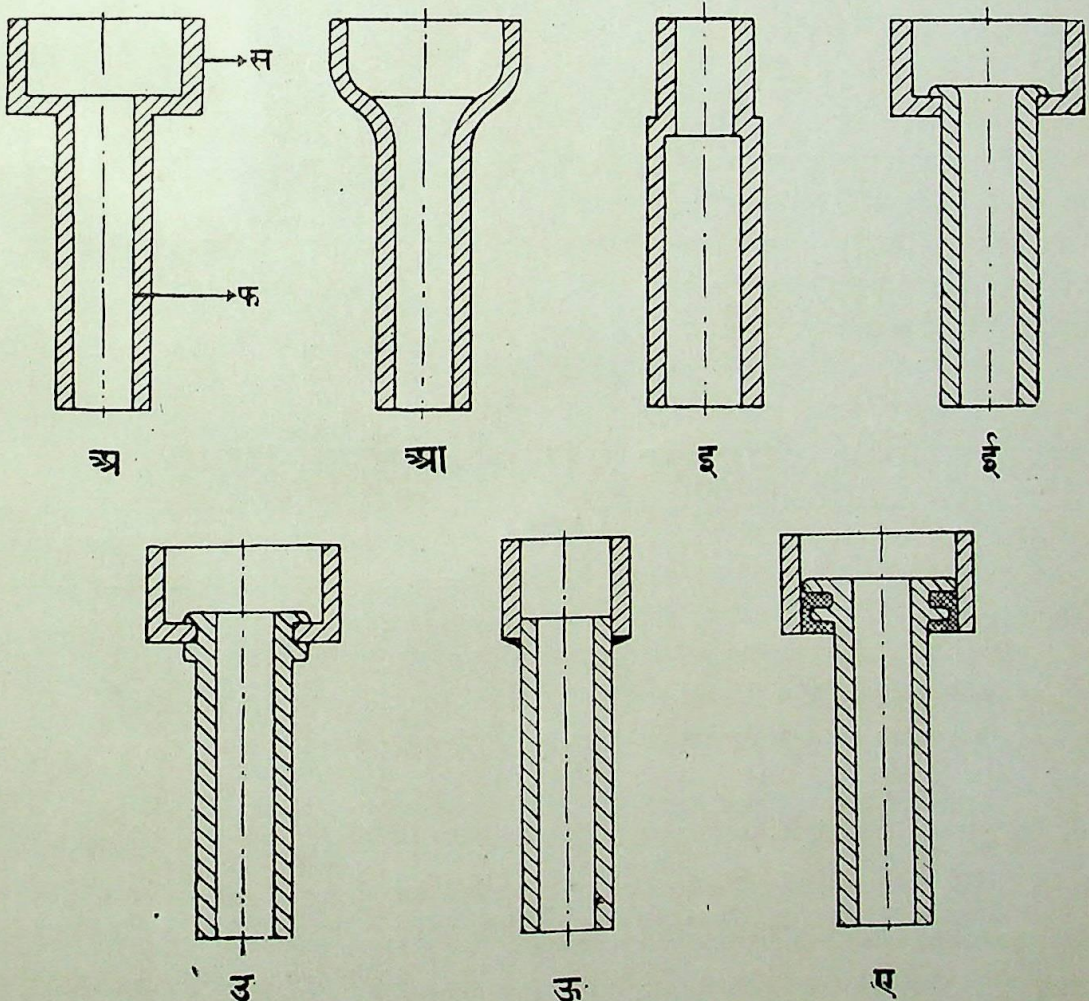
चित्र 2—विभिन्न प्रकार के निपिल

गया है जिस प्रकार इस्तरी के प्लगों और सोल्डरिंग आयरन के तार बंधे होते हैं। उद्देश्य यह होता है कि उसमें से निकलते हुये कपल के तार मुड़ तुड़कर टूट न जायें। कपल के तारों 3, 4 को स्लीव, रंग, लैकर आदि से इन्सूलेट करने के बाद उन्हें साधारण कपल की तरह मरोड़ी देकर सिरे पर झाल दिया जाता है फैरुल को साफ करके उसे अन्दर से टिन कर लेते हैं। साफ कलई की बती सी बना कर अन्दर रख कर सोल्डरिंग आयरन की सहायता से फैरुल को कलई से भरा जा सकता है। गर्म फैरुल के भीतर पिघले टिन में कपल को धंसा कर ठण्डे हो जाने देते हैं। फैरूल के निचले सिरे पर कलई का एक अर्धगोलाकार सिरा चित्रवत बन जाता है। इसके बाद रत्तक 5–6 लगा दिये जाते हैं।

चित्र 1 में दिखाया गया है कि कपल का मरोड़ा हुआ भाग कलई में कितना नीचा जाना चाहिये। पर यह आवश्यक नहीं कि यह निचाई ठीक इतनी ही हो। यह पाया गया है कि निपिल में भरी हुई कलई यदि शुद्ध होती है तो अच्छा रहता है। यदि निपिल को बाहर से भी कलई कर दिया जाता है तो बर्फ में स्थानीय क्रिया की सम्भावना कम हो जाती है। ठण्डा जोड़ बनाने के बाद यदि उस पर लैकर चढ़ाते रहते हैं तो एक ही बर्फधारी पात्र में कई कपल रखे जा सकते हैं।

इस विवरण से यह स्पष्ट है कि यदि किसी प्रयोग में कई कपलों के ठण्डे जोड़ों को एक ही पात्र में रखना हो तो सब तारों को एक ही निपिल में डाला जा सकता है। हम इस प्रकार एक निपिल में एक दर्जन कपल तक अक्सर सफलतापूर्वक इस्तेमाल करते रहे हैं। इस प्रकार के ठण्डे जोड़ बनाने के संबंध में अधिक विस्तृत जानकारी लेखक से प्राप्त की जा सकती है।

संदर्भ

1. रोज़र, डब्लू. एफ. और वैन्सल एच. टी., **ज. रिसर्च नेश. ब्यूरो स्टैन्डर्ड्स, 14** (1953), 234
2. बेटी, जे. ए., हेन शू–चिंग और बनेडिक्ट, एम, **प्रोसी. अमे. एकाडे. आर्टस साइं 72** (1938), 137

छोटी फर्मों को प्रौद्योगिक सहायता – ब्रिटिश प्रयोग

एस. रंग राजा राव
वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

छोटे उद्योगों को वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक प्रगतियों की उपयोगी जानकारी पहुंचाने की क्रिया में कुछ विशेष समस्यायें सामने आती हैं। ब्रिटेन में इन समस्याओं को कैसे सुलझाया जा रहा है इसका संक्षिप्त विवरण इस लेख में प्रस्तुत किया गया है।

Technical Aid to Small Firms—A British Solution by S. Ranga Raja Rao, Council of Scientific & Industrial Research, New Delhi.

The dissemination of scientific and technical knowledge to small firms has its peculiar problems. The British attempt at the solution of these problems has been outlined in the article.

विज्ञान और प्रोद्यौगिकी की प्रगति में ब्रिटेन ने जो योग दिया है उसे समस्त संसार ने स्वीकार किया है। पर ब्रिटेन में ही इन प्रगतियों में बहुत सी ऐसी हैं जो व्यवहारिक उपयोग में नहीं लाई जा सकी हैं।

प्रौद्योगिक प्रगति और उसके व्यवहारिक उपयोग के बीच जो अत्याधिक समय लग रहा है वह कुछ दिनों से राष्ट्रीय चिन्ता का विषय बन गया है। इस समस्या पर बहुत सी कमेटियों और और कान्फ्रेंसों में विचार किया गया है। यह अनुभव किया गया है कि इस कमी का कारण बहुत सी, विशेषता मध्यम और छोटी उद्योग फर्मों और उन संस्थाओं के बीच सम्पर्क का अभाव है, जिनके पास इस प्रकार का बहुत सा उपयोगी ज्ञान और अनुभव इकट्ठा है। सम्पर्क के इस अभाव की तीव्रता कम करने के लिये ब्रिटेन में औद्योगिक रिसर्च एसोसिएशन बनाये गये हैं और वे उत्साह और लगन के साथ नवीन प्रौद्योगिक विकासों तथा देश की वर्तमान औद्योगिक विधियों के बीच सम्पर्क का काम कर रहे हैं। यह सच है कि इन सहकारी अनुसंधान एसोसिएशनें की सेवायें उन बड़ी फर्मों के लिये बहुत उपयोगी हैं जो प्राविधिक प्रगतियों के विषय में चेतन और सजग रहती हैं, पर यह नहीं कहा जा सकता कि उन छोटी फर्मों ने भी, जो उद्योग में 75 प्रति शत से अधिक योग देती हैं, इस नये ज्ञान से समुचित लाभ उठाया है। इन छोटी फर्मों को इस क्षेत्र में विशेष ज्ञानकारी नहीं होती। इसके अतिरिक्त यह पाया गया है कि ये फर्में ऐसी सूचनायें प्राप्त करने में संकोच भी अनुभव करती हैं। ब्रिटेन में विशेषतया मैंनचेस्टर, उत्तर पूर्वी इंग्लैंड, स्काटलैंड में सावधानी पूर्वक किये गये सर्वेक्षणों ने इस बात की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि इस दशा को सुधारने के लिये विशेष कदम उठाये जाने चाहिये। पश्चिम यूरोप के देशों में यूरोपीय उत्पादन एजेंसी ने जो छान–बीन की है उससे इस बात में कोई सन्देह नहीं रहा जाता कि ऐसी स्थिति ब्रिटेन में ही नहीं, दूसरे देशों में भी मौजूद है।

क्षेत्रीय सूचना केन्द्र

इस समस्या के गम्भीर अध्ययन के बाद ब्रिटेन के साइंटिफिक और इंडस्ट्रियल रिसर्च विभाग ने संयुक्त राज्य अमरीका सरकार की आर्थिक सहायता से प्रयोग के तौर पर पिछले 2 वर्षों में 5 क्षेत्रीय प्रोद्यौगिक सूचना केन्द्र बरमिंघम, ब्रिस्टल, कार्डिफ, मैंनचेस्टर और न्यूकैसल में बनाये हैं। इन केन्द्रों का आरम्भ यद्यपि वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान विभाग द्वारा किया गया है और वह इन्हें सहायता भी देता है; पर ये केन्द्र स्वतन्त्र रूप से विभिन्न स्थानीय संस्थाओं द्वारा उद्योग और प्रौद्योगिक कालिजों के घनिष्ठ सहयोग से चलाये जाते हैं। प्रत्येक केन्द्र की एक संचालक समति होती है जिसमें वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान विभाग सहित सभी रुचि रखने वाले पक्षों के प्रतिनिधि सम्मलित होते हैं।

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान विभाग तथा इन केन्द्रों की स्थानीय संस्थाओं के बीच ऐसा सम्बन्ध नहीं होता कि जिसमें आवश्यकतानुसार फेर-बदल करने की गुंजायश न हो। उदाहरण के लिये बरमिंघम में यह केन्द्र बरमिंघम उत्पादकता एसोशिए-शन के सहयोग के चलाया जाता हैं। ब्रिस्टल में एक ऐसी नई योजना पर काम किया जा रहा है, जिसमें प्रमुख भाग क्षेत्रीय उद्योग बोर्ड का है। कार्डिफ में प्रौद्योगिक अनुसंधान सेवा को कालिज आफ एडवान्सड टैक्नोलोजी की सहायता से वेल्स और मनमथशायर का इंडस्ट्रियल एसोशिएशन चला रहा है। मैंनचेस्टर की क्षेत्रीय प्रौद्योगिक सूचना सेवा का संचालन चैम्बर आफ कामर्स की दफ्तरी सहायता से मैंनचेस्टर ज्वाइंट रिसर्च कौंसिल कर रही है। और न्यूकैसिल में नार्थ ईस्ट इंडस्ट्रियल डिवलपमेंट एसोशिएशन ने, जो इस क्षेत्र की औद्योगिक उन्नति और समृद्धि के लिये काम करता है, केवल प्रौद्योगिक सलाह देने के लिये ही एक अफसर नियुक्त किया है। एक छटा केन्द्र स्काटलैंड के शिक्षा विभाग की सहायता से ग्लासगो में काम कर रहा है। इनके अतिरिक्त कुछ दूसरे केन्द्र भी संगठित किये जा रहे हैं।

कार्य की विधि

यद्यपि इन विभिन्न केन्द्रों के बीच आकार और विभिन्न कार्यों पर बल देने के विचार से कुछ अंतर है, फिर

भी उन सबके काम करने का ढंग एकसा है। आमतौर पर इन केन्द्रों का अधिकारी कर्मचारी एक इंजीनियर अथवा व्यवहारिक वैज्ञानिक होता है। उसका प्रौद्योगिक ज्ञान और औद्योगिक अनुभव व्यापक होता है। वह अपने क्षेत्र के उद्योगों के लिये उपयोगी स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सूचना स्रोतों के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। इसके बाद वह भाषणों और समाचार पत्रों के द्वारा और प्रौद्योगिक कालिजों तथा मध्यम और छोटी फर्मों के साथ घनिष्ट सम्पर्क स्थापित करके अपने क्षेत्र में अपने केन्द्र का अधिक से अधिक प्रचार करता है। लोगों को केन्द्र की सेवाओं का ज्ञान कराने के लिये व्यक्तिगत सम्पर्क सबसे अच्छा पाया गया है। यह पाया गया कि किसी समस्या से सम्बन्धित प्रश्न को स्पष्ट और सही रूप से रखने के लिये यह अनिवार्य है कि सूचना अधिकारी स्वयम् कारखाने में जाये। इस प्रकार व्यक्तियों के बीच जो सम्बन्ध स्थापित होते हैं उनसे विचारों के आदान प्रदान में बहुत सुविधा हो जाती है। प्रौद्योगिक सूचना अधिकारी अपने क्षेत्र के विश्वविद्यालय, औद्योगिक अनुसंधान एसोसिएशनों, चैम्बर आफ कामर्स, सार्वजनिक प्रौद्योगिक पुस्तकालयों तथा फेडरेशन आफ ब्रिटिश इंडस्ट्रीज़, ब्रिटिश प्रोडक्टीविटी कौंसिल आदि जैसी राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों से भी सम्पर्क स्थापित करता है। इन सम्पर्कों के द्वारा और अपने व्यापक अनुभव से वह बड़ी औद्योगिक फर्मों, अनुसंधान संस्थाओं और प्रौद्योगिक कालिजों से उन प्रौद्योगिक विशेष सूचनाओं को प्राप्त करने में समर्थ होता है जिसकी आवश्यकता उसके क्षेत्र की फर्मों की प्रौद्योगिक समस्याओं का शीघ्र उत्तर देने के लिये होती है। इस काम का एक विशेष ध्यान देने योग्य पहलू यह है कि बड़ी फर्में इस कार्य में न केवल प्रसन्नता से सहायता देती हैं वरन् इसे प्रोत्साहित भी करती हैं। उदाहरण के लिये एक केंद्र में 2 बड़ी फर्में प्रौद्योगिक कर्मचारियों के लिये लगभग 4,000 पौंड खर्च कर रही हैं।

कार्य का विस्तार

यहां यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि ये केन्द्र कितने विविध प्रकार के प्रश्नों को सफलतापूर्वक हल कर रहे हैं। इतना कहना ही काफी होगा कि ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है छोटे और बड़े उद्योग उनकी उपयोगिता को अधिकाधिक स्वीकार कर रहे हैं और उनसे पूछे जाने वाले प्रश्नों में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इन केन्द्रों का पथ प्रदर्शक विचार यह है कि कोई समस्या इतनी छोटी नहीं है कि वह ध्यान देने योग्य ही नहीं और कोई समस्या इतनी बड़ी नहीं है कि उसका हल ही न मिले।

सम्भवतया इन केन्द्रों की सफलता के बारे में निश्चित रूप से अभी कुछ कहना उचित न होगा। फिर भी इन केन्द्रों का विभिन्न क्षेत्रों में जो स्वागत हुआ है उससे वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान विभाग को प्रोत्साहन मिला है और वह नये क्षेत्रों में भी ऐसी सुविधाओं की व्यवस्था करने की योजना बना रहा है। अधिकतर दशाओं में इस काम के लिये जिन स्थानीय संगठनों से सम्पर्क किया गया है उन्होंने इसका स्वागत किया है और नये केन्द्रों को बनाने की सर्वोत्तम रीतियों पर विचार करने के लिये विभिन्न स्थानीय समितियां काम कर रहीं हैं।

नाइट्रोजन की समस्या

इस लेख में प्रो. एन. आर. धर के उस भाषण का सारांश दिया गया है जो उन्होने 3 जनवरी 1961 को रुड़की में इंडियन साइन्स कांग्रेस के 48 वें अधिवेशन के अध्यक्ष पद से दिया था।

The Nitrogen Problem.

A summary of the address of Prof. N.R. Dhar, General President, Forty eighth Session of the Indian Science Congress, Roorkee, delivered on 3rd January, 1961, is presented in the article.

नाइट्रोजन उवर्रकों का एक अत्यन्त महत्व पूर्ण रचक है। प्रो. धर ने कहा विद्युत आर्क की गर्मी से वायुमंडल के नाइट्रोजन को स्थिर करने की विधि अपनी अक्षमता के कारण अब बिल्कुल त्याग दी गई है, और 4000° फै. तक वायु को गर्म करने और परमाण्विक ऊर्जा के उपयोग की नवीन विधियों को वायु से नाइट्रिक आक्साइड तैयार करने के लिये काम में लाया जा रहा है। हाबर–बाश और सायानामाइड विधियों की अपेक्षाकृत अक्षमता के कारण संसार के कारखानों से केवल 72 लाख टन नाइट्रोजन प्राप्त होती है और नाइट्रोजन के यौगिकों का मूल्य फास्फेटों तथा पौटाश के यौगिकों के मूल्य से बहुत अधिक होता है। नाइट्रोजन उद्योग में पूंजी भी अधिक लगती है। 100 टन अमोनिया प्रति दिन बनाने के कारखाने के लिये 40 लाख डालरों की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि औद्योगिक रूप से पिछड़े हुये देश नाइट्रोजन उद्योग आरम्भ करने में कठिनाई अनुभव करते हैं और किसान नाइट्रोजन उर्वरकों का इस्तेमाल बड़ी मात्रा में नहीं कर पाते।

फसलों के लिये नाइट्रोजन

समशीतोष्ण देशों में जो प्रयोग किये गये हैं उनसे पता चलता है कि धरती में एक पौंड नाइट्रोजन देने से अनाज और दूसरी फसलें 16–17 पौंड उत्पन्न होती हैं, जबकि गर्म देशों यह उत्पादन दी–हुई नाइट्रोजन की मात्रा से केवल 10 गुना होता है। ऐसा जान पड़ता है कि यह वृद्धि धरती में उपस्थित सड़े–गले जैविक पदार्थों पर आधारित होती है। धरती में इन पदार्थों की मात्रा गर्म देशों की अपेक्षा ठण्डे देशों में अधिक पाई जाती है। यह हिसाब लगाया गया है कि आजकल संसार में प्रति वर्ष लगभग 100 करोड़ टन अनाज और 70 करोड़ टन दूसरे खाद्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इसके लिये 10 करोड़ टन संयुक्त नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। इसमें से रासायनिक नाइट्रोजन उद्योग से 70 लाख टन, फलीदार वनस्पति से 50 लाख टन, वर्षा के द्वारा 50 लाख टन तथा गोबर आदि की खाद से लगभग 20 लाख टन नाइट्रोजन आता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में, जहां इस प्रकार के अंक प्राप्त हैं, 15–20 लाख टन रासायनिक नाइट्रोजन; 20 लाख टन फलीदार नाइट्रोजन और लगभग 10 लाख टन पशुशाला की खाद का नाइट्रोजन इस्तेमाल किया जाता है और 52 करोड़ एकड़ कृषि भूमि से लगभग डेढ़ करोड़ टन नाइट्रोजन वार्षिक फसलों के रूप में निकाला जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आज संसार में फसलों की नाइट्रोजन की अधिकतर आवश्यकता धरती की नाइट्रोजन से ही पूरी होती है। इसलिये हमें धरती की इस स्थायी नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि करने का प्रयास करना चाहिये।

धरती में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाने का सबसे सरल उपाय यह है कि बेसिक स्लेग के रूप में 50–100

पौंड फास्फेट प्रति एकड़ मिला कर दाने निकालने के बाद फसल के डण्ठल, गोबर, घास, बैलों, पत्थर–कोयले के व्यर्थ आदि को धरती में जोत दिया जाये। इस प्रकार प्रति एकड 100 पौंड वायु मंडल नाइट्रोजन स्थिर किया जा सकता है। यह रीति गर्म और समशीतोष्ण दोनों प्रकार के देशों में, जहां काफी नाइट्रोजन को स्थिर करने और फसल के लिये नाइट्रोजन, फास्फेट तथा पोटाश को प्राप्य बनाने में 100–150 दिन की आवश्यकता होती है, इस्तेमाल की जा सकती है। इस संबंध में यह सूचना रोचक होगी कि ब्रिटिश एसोसिएशन फार दि एडवान्समेंट आफ साइंस के 1949 के अधिवेशन में यह बताया गया था कि संसार के खाद्य का जो भाग कृत्रिम नाइट्रोजन की सहायता से उत्पन्न होता है वह केवल 3 प्रतिशत है।

भारत में 1956 में अन्नों का उत्पादन (लाख टनों में) चावल 316, बाजरा 184, ज्वार 167, गेहूं 123, मक्का 37 और जौ 34 था। इन सबको मिला कर 861 लाख टन अन्न वार्षिक उत्पन्न होता है और इसके लिये 70–80 लाख टन नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर देश में 1960–61 में जिस नाइट्रोजन के उत्पादन की आशा की जाती वह (लाख टनों में) है: सिन्दरी 1.189, नेवैली 0.203, नांगल 0.406, रूरकेला 0.711 और निजी कारखाने 0.366; कुल मिला कर 2.875 लाख टन। 1956 में भारत में 1.55 लाख टन नाइट्रोजन उर्वरक के रूप में काम में लाया गया था।

ऐसा मालूम होता है कि जिन देशों में व्यापारिक उर्वरक अधिक मात्रा में नहीं इस्तेमाल किये जाते, उनमें नाइट्रोजन देने मे फसलों में बहुत अधिक वृद्धि होती है, जब कि प्राप्ति के ह्रास का वह नियम, जिसकी ओर आधुनिक कृषि में ध्यान नहीं दिया जा रहा है, नीदरलैंड. बेल्जियम, नार्वे आदि देशों में, जहां अधिक उर्वरक इस्तेमाल होते हैं, काम कर रहा है। जापान, चीन और तैवान जैसे क्षेत्रों में जहां उर्वरकों के साथ बहुत सा कम्पोस्ट, वनस्पति और जन्तु व्यर्थ इस्तेमाल किया जाता है, नाइट्रोजन की उतनी ही मात्रा देने से फसल में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होती है। यह जानना भी रोचक है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के कई कृषि प्रयोग केन्द्रों में यह पाया गया है कि यदि फसलों के हेर फेर से जैविक पदार्थ अधिक उत्पन्न किया जाता है तो गेहूँ और मक्का की उपज बढ़ जाती है। यदि फसलों का सब बचा–खुचा भाग खेत में इस्तेमाल कर लिया जाता है और हेरफेर में फलीदार वनस्पति बोई जाती है तो धरती में जैविक पदार्थ का स्तर काफी ऊंचा बना रहता है। हाल की खोजबीनों से पता चला है कि उर्वरकों के वृद्धिमान उपयोग की सम्भावना का जो अनुमान लगाया गया है वह अधिक है। संयुक्त राज्य अमेरिका में किये गये प्रयोग यह दर्शाते हैं कि यदि प्रति एकड़ 125 पौंड से अधिक नाइट्रोजन काम में लाई जाती है तो उससे मक्का की उपज घटने लगती है। इसी प्रकार डेनमार्क में इस नतीजे पर पहुँचा गया है कि 60 प्रतिशत उर्वरक अधिक उपयोग करने से उपज में केवल 4 प्रति शत की वृद्धि होती है।

धरती में कैल्शियम फास्फेट और नाइट्रोजन

फलीदार वनस्पति उगाकर धरती में सुधार करने के संबंध में यह अनुमाना गया है कि सामान्य दशाओं में इससे प्रति एकड़ 112 पौंड नाइट्रोजन खेत में पहुँचती है। पर वास्तव में इस नाइट्रोजन की मात्रा प्रति एकड़ 40 से 60 पौंड तक ही होती है। धर और उनके साथियों ने फूंस से जो प्रयोग किये हैं उनमें 0.5 प्रति शत कार्बन फूंस के रूप में इस्तेमाल हुआ था और प्रकाश तथा कैल्शियम फास्फेट की उपस्थिति में 215 पौंड प्रति एकड़ नाइट्रोजन का स्थिरीकरण देखा गया। इस प्रकार बेसिक स्लेग और मुलायम फास्फेट चट्टान के साथ फूंस मिलाकर जोत देने से लगभग उतना ही नाइट्रोजन स्थिर किया जा सकता है जितना कि फलीदार वनस्पतियों की सहायता से प्राप्त किया जा सकता है। यह मात्रा कुछ अधिक भी हो सकती है।

इलाहाबाद में एक वर्ष तक धर और उनके साथियों ने जो प्रयोग किये हैं उनमें नगर के व्यर्थ को अकेले ही अथवा बेसिक स्लेग मिला कर ऐसी धरती में डाला गया जिसमें 0.5 प्रति शत जैविक कार्बन और 0.04 प्रतिशत नाइट्रोजन था। इन प्रयोगों ने दर्शाया कि यदि धरती के तल का औसत ताप 26° सें. होता है तो जैविक पदार्थ के मिलाने से भूमि का उपजाऊपन काफी बढ़ जाता है। यदि इसमें बेसिक स्लैग डाला जाता है तो फसल बहुत बढ़िया होती है। गोबर अथवा गेहूं के फूंस और उत्तर अफ्रीका की मुलायम फास्फेट चट्टान और बेसिक स्लेग को मिला कर डालने से भी ऐसे ही नतीजे प्राप्त होते हैं। यह पाया गया है कि जिन धरतियों में फास्फेट अधिक होता है उनमें नाइट्रोजन भी अधिक होता है। वे बहुत उपजाऊ होती है और उनमें कार्बन/नाइट्रोजन अनुपात आमतौर से 10 से कम होता है।

सब वनस्पति पदार्थ, और पीट तथा बिटुमिनों पत्थर-कोयला भी, जब धरती में जोते जाते हैं तो शीघ्र ही वायुमण्डल के नाइट्रोजन को स्थिर करते हैं। यह क्रिया प्रकाश और फास्फेटों की उपस्थिति में अधिक होती है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण के संबंध में जलकुम्भी फूंस और घासों से बहुत बढ़िया नतीजे प्राप्त हुये हैं।

यह एक सुविदित बात है कि रोथैमस्टैड के एक खेत में 1843 में, जब उसकी धरती का कुल नाइट्रोजन 0.122 प्रतिशित था, गेहूं बोना आरम्भ किया गया। इस खेत को प्रति वर्ष 200 पौंड नाइट्रोजन धारी 14 टन पशुशाला की खाद प्रति एकड़ दी गई और उनमें प्रति वर्ष गेहूं बोया गया। अब उसमें नाइट्रोजन की मात्रा 0.274 प्रति शत है। एक खेत में 86-129 पौंड नाइट्रोजन अमोनियम सल्फेट अथवा अमोनियम नाइट्रेट के रूप में प्रति वर्ष जोता गया और गेहूं बोया गया। इससे धरती खराब हुई और कुल नाइट्रोजन में कमी आ गई। इसी प्रकार के एक फल संयुक्त राज्य अमेरिका, डेनमार्क और दूसरे देशों में भी प्राप्त हुवे हैं। इनके अनुसार अकेले अमोनियम सल्फेट या नाइट्रेट से नहीं, गोबर से खेत का उपजाऊपन बढ़ता है।

वनस्पति शास्त्रियों ने अनुमान लगाया है कि प्रति वर्ष प्रकाश संश्लेषण के द्वारा पृथ्वी पर सैलूलोसी पदार्थों के रूप में जैविक कार्बन की जो मात्रा प्राप्त होती है, उसका भार लगभग 1,375 करोड़ टन होता है। यह मान कर कि प्रकाश संश्लेषण से पृथ्वी के खेतों को जो कार्बन मिलता है उसका केवल 40 प्रति शत प्रति वर्ष आक्सीकृत होता है और प्रति ग्राम आक्सीकृत कार्बन के पीछे सूर्य के प्रकाश में केवल 20 मिलीग्राम नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है, हम इस नतीजे पर पहुंचते कि पृथ्वी की धरातल को प्रति वर्ष 11 करोड़ टन नाइट्रोजन स्थिरीकरण द्वारा मिलता है, इसमें से आधा सूर्य के प्रकाश के अवशोषण के द्वारा आता है। इसलिये यह विधि धरती में नाइट्रोजन पहुंचाने की प्रमुख विधि और विश्व में फसलों का मुख्य स्रोत जान पड़ती है।

नाइट्रोजन हानि और उसका मंदकरण

यह सुविदित है कि धरती में नाइट्रीकरण की अन्तिम दशा में नाइट्रेट बनते हैं और इस प्रक्रम के बीच में अस्थायी अमोनियम नाइट्राइट उत्पन्न होता है जो शीघ्र ही गर्मी देकर नाइट्रोजन और पानी में विच्छेदित हो जाता है। कार्बोहाइड्रेट और दूसरे जैविक यौगिक इस नाइट्रीकरण और गैस के रूप में नाइट्रोजन की आंशिक हानि को मंद करते हैं और इसलिये ह्यूमस, जो मुख्यतः लिग्नो–फास्फो–प्रोटीन होती है, न केवल धरती को नाइट्रेट और फास्फेट होती है, वरन् नाइट्रोजनधारी यौगिकों की रक्षा भी करती है। जब गहन खेती के सिलसिले में, जैसा कि हालैण्ड और बेल्जियम में किया जाता है, खेत में नाइट्रोजनधारी उर्वरकों की बड़ी मात्रायें डाली जाती हैं तो सदा नाइट्रेटों की बड़ी मात्रायें उत्पन्न होती हैं। ये आक्सीकारी होने के कारण ह्यूमस के साथ प्रतिक्रिया करती हैं, उसे विच्छेदित करती हैं और उपजाऊपन को हानि पहुँचाती है।

इस हानि को कम करने के लिये खेत में पशुशाला की खाद, फूंस, कम्पोस्ट आदि को बड़े परिमाण में डाला जाना चाहिये।

चरागाहों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण

संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग ९९ करोड़ एकड़ में घास उगती है। प्रति एकड़ घास के मैदान में 40 पौंड नाइट्रोजन का स्थिरीकरण मान कर 6.6 करोड़ एकड़ से 13.2 लाख टन नाइट्रोजन की आशा की जा सकती है। चरागाहों के लिये 20 पौंड प्रति एकड मान कर 63.3 करोड़ एकड़ से 63.3 लाख टन नाइट्रोजन का स्थिरीकरण हो सकता है। इसी प्रकार 30.1 करोड़ एकड़ जंगली भूमि में 30.1 लाख टन नाइट्रोजन स्थिर की जा सकती है। इस तरह कुल 99 करोड़ एकड़ घास के मैदान में 106.6 लाख टन नाइट्रोजन स्थिर हो सकती है। पर लगभग 1 करोड़ टन नाइट्रोजन प्रति वर्ष खेतों में मक्का, गेहूं, दूसरे अन्न, चारे, रेशे, रुई, तमाखू आदि उपजाने में काम आ जाती है।

अनुभव से यह पाया गया है कि गोबर को जब कम्पोस्ट करके धरती में डाला जाता है तो उपज बढ़ती है। इसी प्रकार मछली, खून, बीट आदि लाभदायक पायी गयी है। यह विदित है कि जिन जैविक यौगिकों में कार्बन/नाइट्रोजन अनुपात 10 से कम होता है वे सभी धरतियों में सरलता से आक्सीकृत और नाइट्रित हो जाते हैं तथा अमोनियम लवण नाइट्रेट, फास्फेट, चूना आदि देते हैं। इसी प्रकार जन्तु और पौधा पदार्थों का कम्पोस्ट जिसमें कार्बन/नाइट्रोजन अनुपात 10–14 होता है, उपज बढ़ाने में सहायता करते हैं। वे उगते हुये पौधे को अमोनियम लवण, नाइट्रेट, फास्फेट, पोटाश, चूना और दूसरे वनस्पति पोषण धीरे धीरे देते हैं। पर ऐसे जैविक पदार्थ जिन में कार्बन। नाइट्रोजन अनुपात 15 से अधिक होता है सीधे खेत में नहीं डाले जाते। इसलिये कि यह समझा जाता है कि इससे धरती में नाइट्रोजन की मात्रा कम होती है। पर धर और उनके साथियों ने नाइट्रोजन स्थिरीकरण के प्रयोगों में धरती में जो जैविक पदार्थ मिलाये हैं, उनसे पाया गया है कि 100–150 दिन में नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है और धरती तथा ह्यूमस में आरम्भिक से अधिक नाइट्रोजन हो जाता है। उन्होंने यह भी पाया है कि यदि जैविक पदार्थ को सीधा खेत में डाल दिया जाता है तो उसे कम्पोस्ट करके डालने की अपेक्षा नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता अधिक होती है। इस प्रक्रम में फास्फेट बहुत महत्वपूर्ण भाग लेते हैं।

खारी धरती को कृषि योग्य बनाने के प्रयत्न में हड्डी के चूरे और फूंस अथवा शीरे को मिला कर डालने से राजस्थान, मैसूर, उत्तर प्रदेश और बिहार में अत्युत्तम नतीजे प्राप्त हुये हैं। इसी प्रकार पौधा पदार्थ और नगर के कूड़े, बेसिक स्लैग और चट्टानी फास्फेटों को कम्पोस्ट करने में नाइट्रोजन स्थिरीकरण में वृद्धि होती है। फास्फेट रहित कम्पोस्ट में 0·5–0.8 प्रति शत नाइट्रोजन होता है जब कि फास्फेट-धारी कम्पोस्ट में नाइट्रोजन की मात्रा 1–2 प्रति शत पायी जाती है और प्राप्य नाइट्रोजन तथा फ़ास्फेट भी सरलता से अधिक हो जाते हैं। धर और सहकारियों ने पाया है कि कम्पोस्ट बनाने के प्रक्रम में सूर्य के प्रकाश से कम्पोस्ट में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है। भारत के बहुत से सरकारी फार्मों में बेसिक स्लेग के साथ मिला कर फूंस देने से उपज में 25.30 प्रति शत की वृद्धि देखी गयी है। सफौक (इंग्लैंड) में खेत में प्रति एकड़ जौ के फूंस के साथ बेसिक स्लैग के रूप में 90 पौंड फास्फोरस पैन्टाआक्साइड देने से 30.4 हंडरवेट जौ उत्पन्न हुआ, जबकि अमोनियम सल्फेट के रूप में 112 पौंड नाइट्रोजन देने से प्रति एकड़ 26.6 हण्डरवेट जौ मिला था। तुलना के लिये जिस अनुपचारित खेत में जौ बोया गया था उसकी उपज प्रति एकड़ 14 हण्डरवेट जौ थी। इसके अतिरिक्त जिस धरती में फूंस और स्लैग डाले गये थे उसमें कुल और प्राप्य नाइट्रोजन की मात्रा सबसे अधिक पायी गयी थी।

विमर्श

कौयर: इट्स एक्सट्रैक्शन, प्रापर्टीज एंड यूसेज (कयर : उसका निसारण, गुणधर्म और उपयोग) (अंग्रेजी); सचित्र ; पृष्ठ 54 ; मूल्य 6 रुपये

कयर उद्योग : नारियल की जटाओं का उद्योग (हिन्दी) सचित्र; पृष्ठ 67; मूल्य 4 रुपये ;

प्रकाशक–कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली ।

नारियल के फल की जटा से जो उपयोगी रेशा प्राप्त होता है उसे कयर कहते हैं। अपनी प्राकृतिक, लचक, टिकाऊपन, नमी सहने की क्षमता और अन्य गुण धर्मों के कारण उसे अनेक प्रकार से उपयोग किया जाता है। देश के पश्चिमी तट पर, विशेषतया केरल में, कयर से रस्से, रस्सियां, फर्श, चटाइयां, बोरे, थैले आदि एक सुव्यवस्थित उद्योग में बनाये जाते हैं।

संसार के नारियल उत्पादक देशों में भारत दूसरे स्थान पर आता है। यहां लगभग 430 करोड़ नारियल प्रति वर्ष पैदा होते हैं। उनमें से लगभग आधे नारियलों से कयर प्राप्त किया जाता है। कयर विदेशों को भेजे जाने वाले माल में महत्वपूर्ण स्थान रखता है और और प्रति वर्ष लगभग 8 करोड़ रुपये का बाहर भेजा जाता है।

कयर उद्योग मूलतः घरेलू उद्योग है। अनुमाना जाता है कि मलाबार तट पर लगभग 1 लाख परिवार कयर उद्योग से ही रोजी कमाते हैं। केरल में चटाइयां और पट्टियां बनाने के कुछ कारखाने भी हैं जिनमें 15,000 आदमी काम करते हैं। इस उद्योग के विकास के लिये भारत सरकार ने 1953 में कयर उद्योग अधिनियम के अन्तर्गत कयर बोर्ड की स्थापना की है। अलप्पी के निकट कालातूर में एक केन्द्रीय कयर अनुसंधान संस्थान और एक प्रयोगी उत्पादन केन्द्र बनाया गया है। केन्द्रीय संस्थान की एक शाखा कलकत्ते में भी काम करती है।

बुनाई प्रोद्योगिकी में प्रौद्योगिक अध्ययन के अखिल भारतीय बोर्ड ने 1950 में अनुभव किया था कि इस उपयोगी रेशे के संबंध में कोई प्रामाणिक पुस्तक प्राप्य नहीं है। कयर बोर्ड के अनुरोध पर कौंसिल आफ साइंटिफिक एंड इण्डस्ट्रियल रिसर्च ने कयर के संबंध में एक पुस्तक अंग्रेजी में प्रकाशित की और उसका हिन्दी रूपान्तर कराया। इन पुस्तकों के आरम्भ में एक परिचय और अन्त में संदर्भ तथा अन्य पठनीय साहित्य की सूची दी गई है। बीच के सात अध्यायों में क्रमशः नारियल से रेशे निकालने की विधियां; कयर तन्तु की रचना और भौतिक गुण; कयर डोरी; बुनाई, रंगाई और छपाई; रस्सी और रस्से; कयर के अन्य उपयोग तथा बिक्री और व्यापार का विवेचन किया गया है। इस विवेचन में जो सामग्री दी गई है उसमें इस उद्योग के प्रौद्योगिक तथा दूसरे पहलुओं से संबंधित सब नई सूचनायें सम्मिलित हैं। आवश्यकतानुसार चित्र, ग्राफ और सारणियां दी गई हैं।

पुस्तकें कयर के उत्पादन, उपयोग और व्यापार में रुचि रखने वाले लोगों के लिये विभिन्न सूचनाओं की भंडार और बहुत काम की हैं।

प्राप्त प्रकाशन

बी कीपिंग, पांचवां संस्करण ; 1956, पृष्ठ 161; मूल्य 1 रुपया 50 नये पैसे

प्राकृतिक चिकित्सा–विधि; लेखक–शरणप्रसाद; 1959; पृष्ठ 235; मूल्य 1 रु० 50 नये पैसे

कुष्ठ–सेवा ; लेखक–रविशंकर शर्मा; 1959; पृष्ठ 163; मूल्य 1 रुपया 25 नये पैसे

आत्मज्ञान और विज्ञान, लेखक–विनोबा ; 1959; पृष्ठ 154; मूल्य एक रुपया

आहार और पोषण, लेखक–झवेरभाई पटेल, 1960, पृष्ठ 76; मूल्य 50 नये पैसे

प्रकाशक–अखिल भारत सर्व–सेवा–संघ प्रकाशन, राजघाट, काशी।

छत छाने की घास और ताड़ के पत्तों के सड़ने और आग से रक्षा के उपचार, भारतीय वन प्रकाशन, हिन्दी ग्रन्थमाला संख्या–2; लेखक–ए. पुरुषोतम व कुंवरसिंह राणा ; अनुवादक–बाबूराम वर्मा ; 1960; पृष्ठ संख्या 13; मूल्य 1 रुपया 12 नये पैसे या 1 शिलिंग 9 पैंस

बुशेरी प्रक्रिया से प्रकाष्ठ बल्लियों का उपचार करने के संबंध में टिप्पणी, भारतीय वन प्रकाशन हिन्दी ग्रन्थमाला, संख्या–10; लेखक–ए. पुरुषोत्तम और विद्यासागर; अनुवादक–बाबूराम वर्मा; 1960; पृष्ठ संख्या 8; मूल्य 1 रुपये 15 नये पैसे या 2 शिलिंग

इमली के बीजों के औद्योगिक उपयोग, भारतीय वन प्रकाशन, हिन्दी ग्रन्थमाला संख्या–13; लेखक–पी. सूर्य प्रकाश राव; अनुवादक–बाबूराम वर्मा; 1960; पृष्ठ संख्या 2; मूल्य 1 रुपया 15 नये पैसे या 2 शिलिंग

काष्ठ की पहिचान, भाग–1 भारतीय वन प्रकाशन, हिन्दी ग्रन्थमाला संख्या–14; लेखक–क. अहमद चौधरी; अनुवादक–दयानन्द बडौला; 1960; पृष्ठ संख्या 9; मूल्य 1 रुपया 10 नये पैसे या 1 शिलिंग 9 पेंस

पेटियों के लिये उपयुक्त भारतीय लकड़ियों पर कुछ टिप्पणियां, भारतीय वन प्रकाशन, हिन्दी ग्रन्थमाला संख्या–15; लेखक–एम. ए. रहमान और एन. सी, चटर्जी; अनुवादक–बाबूराम वर्मा; 1960; पृष्ठ संख्या 17; मूल्य 2 रुपया 45 नये पैसे या 4 शिलिंग

कमला तेल–तथ्य और अनुमान, भारतीय वन प्रकाशन, हिन्दी ग्रन्थमाला संख्या–16; लेखक–एस. वी. पुण्ताम्बेकर; अनुवादक– बाबूराम वर्मा; 1960; पृष्ठ संख्या 7; मूल्य 85 नये पैसे या 1 शिलिंग 3 पैंस

भारतवर्ष के सजावटी व कलात्मक प्रकाष्ठ, भारतीय वन प्रकाशन हिन्दी ग्रन्थमाला संख्या–19; लेखक–एम. ए. रहमान; अनुवादक–बाबूराम वर्मा; 1960; पृष्ठ संख्या 4; मूल्य 1 रुपया 5 नये पैसे या 1 शिलिंग 9 पैंस

प्रकाशक–प्रबन्धक, भारत सरकार प्रकाशन, सिविल लाइन्स, दिल्ली–8।

लघु उद्योगों को सहकारी सहायता; पृष्ठ संख्या 63

रंगलेप और रोगन बनाने की योजना; लघु उद्योग योजना संख्या–38; पृष्ठ संख्या 11; मूल्य 15 नये पैसे या 4 पैंस

लाउडस्पीकर बनाने की योजना, लघु उद्योग योजना संख्या–69; पृष्ठ संख्या 9 ; मूल्य 15 नये पैसे या 4 शिलिंग

निओन गैस की बिजली की ट्यूबें, लघु उद्योग योजना संख्या–77; पृष्ठ संख्या 20; मूल्य 20 नये पैसे या 4 पैंस

फलों और तरकारियों का संरक्षण, लघु उद्योग योजना संख्या–81; पृष्ठ संख्या 12; मूल्य 15 नये पैसे या 4 शिलिंग

लचीले धागों से गुंथी हुई डोरी और फ़ीते बनाने की योजना, लघु उद्योग योजना संख्या–90; पृष्ठ संख्या 12; मूल्य 15 नये पैसे या 4 पैंस

औद्योगिक मद्यसार बनाने की योजना, लघु उद्योग योजना संख्या–91; पृष्ठ संख्या 12; मूल्य 15 नये पैसे या 4 शिलिंग

कांच का सजावट वाला सामान, लघु उद्योग योजना संख्या–87; पृष्ठ संख्या 8; मूल्य 10 नये पैसे या 3 पेंस

मछली पकड़ने के छोटे जाल; लघु उद्योग योजना संख्या–96; पृष्ठ संख्या 12; मूल्य 15 नये पैसे या 4 पेंस

प्रस्तुतकर्ता–केन्द्रीय लघु उद्योग संगठन, वाणिज्य और उद्योग मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

प्रकाशक–प्रबन्धक, भारत सरकार प्रकाशन, सिविल लाइन्स, दिल्ली–8

व्यवसाय संदेश, जनवरी 1961; संपादक–आदित्य कुमार अग्निहोत्री (हिन्दुस्तानी मर्चेण्टस एण्ड कमीशन एजेण्ट्स एसोसिएशन लिमिटेड, 342, कालबा देवी रोड, बम्बई–2); पृष्ठ संख्या 30; मूल्य 50 नये पैसे

बाल ज्योति, दिसम्बर 1960; प्रधान सम्पादक–के. यू. भाम्भ्रा (अखिल भारतीय 'कास्मिक शिक्षा समिति, नूतन बालघर, कानपुर); पृष्ठ संख्या 24; वार्षिक मूल्य 3 रुपये एक प्रति का 35 नये पैसे

कलई कदीर (तमिल में), फरवरी 1961; सम्पादक–जी. आर. दामोदरन (कलई कदीर पब्लिकेशन्स, कोयम्बतूर–1, पृष्ठ संख्या 70; मूल्य 60 नये पैसे

अंडी के तेल से नई वार्निशें

अंडी के तेल को निर्जलित करके वार्निशें बनाने के काम में लाया जाता है। इस संबंध में इसके गुणधर्म अलसी और टुंग के तेलों के गुणधर्मों के बीच में होते हैं। हैदराबाद की क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला में अंडी के तेल से एक नये प्रकार के रेज़िन बनाने की विधि विकसित की गई है। इस रेज़िन का उपयोग करके जो वार्निशें बनाई जाती हैं उनको रिसीन वार्निशें कहते हैं। ये वार्निशें गंधक के तेजाब, पैट्रोल, ह्वाइट, स्प्रिट और अल्कोहल से खराब नहीं होतीं। इनकी चिपक अच्छी और परत लचकदार होती है। इनसे सफेद और हल्के रंग के अच्छे पेन्ट तैयार किये जा सकते हैं। इन रेज़िनों को तैयार करने के लिये चार क्रियायें की जाती है।

अंडी के तेल के 1–5 भागों को 0.5–4 भाग बैरोजे या रोज़िन के साथ 200° सें. और 250° सें. के बीच में विभिन्न तापों पर उस समय तक गर्म करते हैं जब तक कि एक ऐसा पदार्थ नहीं बन जाता, जिसका एसिड मान 15–30 हो। यदि इस क्रिया में किसी निष्क्रिय गैस का वातावरण रखा जाता है और मिश्रण को अच्छी तरह हिलाया जाता है तो एक हल्के पीले रंग का पदार्थ जल्दी ही प्राप्त हो जाता है। यह क्रिया अंडी के तेल का ऐस्टरीकरण कहलाती है।

ऊपर के प्रतिक्रिया मिश्रण में बैरोजे या रेज़िन के बोझ पर 15–40 प्रति शत मैलीक एनहाइड्राइड मिलाते हैं और मिश्रण को निरन्तर हिलाते हुये 160–200° सें. पर 1–2 घंटे गर्म करते हैं। इसके बाद मिश्रण के ताप को 230–250° तक बढ़ा कर उसे 4–5 घंटे गर्म किया जा सकता है। इस क्रिया में अण्डी के तेल में उपस्थित हाइड्राक्सिल वर्ग की मैलीक एनहाइड्राइड के साथ संघनन प्रतिक्रिया होती है।

ऊपर की क्रिया से जो मध्य पदार्थ प्राप्त होता है उसको ग्लिसरीन या पैन्टाऐरिथ्रिटोल जैसे पदार्थों के साथ 250–280° सें. पर 3–4 घंटे तक गर्म किया जाता है। उद्देश्य यह होता है कि जो माल प्राप्त हो उसका एसिड मान 15 या कम हो। ग्लिसरीन या पेन्टाऐरिथ्रिटोल में कई हाइड्राक्सिल वर्ग होते हैं। इसलिये उन्हें पौलिओल कहा जाता है। इस प्रतिक्रिया के लिये उनकी मात्रा इस हिसाब से ली जाती है कि वे मध्य पदार्थ में उपस्थित अम्ल वर्गों का ऐस्टर बनाने के लिये आवश्यक मात्रा से $\frac{1}{5}$ – 4 गुनी हो।

अंडी के तेल अथवा तीसरी क्रिया में काम में लाये गये पौलिओलों में यदि हाइड्राक्सिल वर्ग बाकी रह जाता है तो उसका निराकरण करने के लिये माल को 250–280° सें. पर गलाये हुये सोडियम बाइसल्फेट के चूर्ण की उपस्थिति में गर्म किया जाता है। सोडियम बाईसल्फेट की मात्रा आरम्भ में लिये गये अंडी के तेल के बोझ पर 0.2 से 1.5 प्रति शत तक डाली जाती है। इस क्रिया में माल को आवश्यक अवस्था तक गाढ़ा भी किया जाता है। क्रिया की अन्तिम अवस्था में निर्वातन की सहायता से उड़नशील पदार्थ अलग क जाते हैं।

वार्निश में सुखावक के तौर पर 0.05 प्रति शत कोबाल्ट के तुल्य कोबाल्ट नैप्थेनेट और 0.5 प्रति शत सीसे के तुल्य लैड नेप्थेनेट डाला जाता है। और उसमें इतनी ह्वाइट स्प्रिट मिलाई जाती है कि उड़नशील पदार्थों की मात्रा 50 प्रति शत हो जाती है [मैनन,

एम. सी., अग्रवाल, जे. एस. और ज़हीर एस. एच., **पेन्टइंडिया, 10** (1) (1960), 77]।

बीजों का तरल उपचार

बीजों को संरक्षित रखने के लिये उन्हें कीट और फफूंद नाशकों से उपचारित किया जाता है। ये पदार्थ बीजों पर धूलि अथवा तरल रूप में लगाये जाते हैं। यह पाया गया है कि तरल रूप में लगाये गये पदार्थ धूलि रूप में लगाये गये पदार्थों की अपेक्षा अधिक लाभकारी होते हैं। बीजों के ऊपर खोल पर बहुत बारीक दरारें होती हैं जिनके भीतर फफूंदों के बीज उपस्थित हो सकते हैं। धूलि रूप में फफूंद नाशक उन तक नहीं पहुंचते और इसलिये उनका विनाश नहीं होता। इसलिये अतिरिक्त फफूंद नाशकों की धूलि बीज पर अच्छी तरह नहीं चिपकती, आसानी से झड़ जाती है।

पिछले दिनों में बीजों का उपचार अधिकतर इन नाशकों की धूलि से किया जाता रहा है। इसका कारण यह है कि थोड़ी-सी धूलि से बहुत से बीजों का उपचार किया जा सकता है जबकि इसी काम के लिये तरल की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है। दूसरे महायुद्ध से तनिक पहले स्वीडन के प्रोफेसर एडोल्फ जाडे ने एक ऐसी विधि का आविष्कार किया था, जिसके द्वारा बीजों का उपचार तरल फफूंद नाशकों से किया जा सकता है। इस विधि का उपयोग करने में न विषैली धूलि उड़ती है और न विषैली वाष्प निकलती है।

बीजों पर लगाने के लिये जब तरल इस्तेमाल किया जाता है तो यह बात ध्यान में रखी जाती है कि तरल सब बीजों पर एक-सा लगे। यदि बूंदें बीजों पर टपकाई जाती हैं तो यह हो सकता है कि कुछ बीज तो बिल्कुल भीग जायें और बहुत से बिल्कुल ही उपचारित न हों। इस कठिनाई का हल करने के लिये संयुक्त राज्य अमरीका में एक विधि विकसित की गई है जिसे मिस्ट-ओ-मैट्रिक कहते हैं। इस विधि में फफूंद नाशकों की प्रत्येक बूंद को बहुत बारीक फुहार का रूप दिया जाता है। इससे एक धुंध बन जाता है। जिन बीजों का उपचार करना होता है उन्हें इस धुंध में से गुजारते हैं। मोटे तौर से इस विधि द्वारा एक बूंद तरल लगभग 4,000 बीजों पर लग जाता है। इस प्रकार प्रत्येक बीज का ऊपरी खोल तरल की अत्यन्त लघु मात्रा सोख लेता है। इस उपचार के लाभ ये हैं कि उपचार पूर्ण होता है, सब बीजों पर तरल एक-सा लगता है, वह बीजों में गहरा प्रवेश कर जाता है और बहुत समय तक ठहरता है। फफूंद नाशक की मात्रा में जो बचत होती है वह स्पष्ट ही है [वर्ल्ड सीड कम्पे. न्यूज़, **10** (1960), 10]।

तेजबल की पत्तियों का उड़नशील तेल

तेजबल का लघु वृक्ष हिमालय की गर्म घाटियों, खासी और नागा पहाड़ियों तथा गंजाम और विज़गापट्टम, पहाड़ियों में जंगली पाया जाता है। वनस्पति शास्त्र में इसे *ज़ैन्थोज़ाइलम एलेटम* राक्सब कहते हैं। यह विशाल *रूटेसी* कुल का पौधा है। इसकी छाल और फलों में एक उड़नशील तेल होता हैं उसके अंडप भाग से जो तेल मिलता है उसकी तुलना तारपीन के तेल से की जा सकती है और वह गंध तथा गुणधर्मों में यूकेलिप्टस के तेल के सामान जीवाणु तथा गंध नाशक होता है। इस वृक्ष की पत्तियां बहुत बड़ी मात्रा में प्रति वर्ष बेकार जाती हैं।

कानपुर के हारकोर्ट बटलर टैक्नौलौजिकल इन्स्ट्टीट्यूट में तेजबल की पतियों केउड़नशील तेल का अध्ययन किया गया है। ये पत्तियां गढ़वाल जिले से जहां वें 'तुमरू' की पत्तियां कहलाती हैं, **प्राप्त** की गयीं थी और दूसरे ही दिन उनका जल आसवन किया गया था। इससे उनके बोझ पर 0.04 प्रति शत उड़नशील तेल प्राप्त हुआ। इस तेल के भौतिक रासायनिक स्थिरांक सारणी 1 में दिये जा रहे हैं।

तेल के विभिन्न अंशों के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि इस तेल का मुख्य रचक मिथाइल नौनाइल कीटोन

सारणी 1–तेजबल की पत्तियों के उड़नशील तेल के भौतिक-रासायनिक स्थिरांक

आपेक्षिक घनत्व, 25° सें. पर	0.8710
रिफ्रैक्टिव इंडैक्स, 25° सें. पर	1.4570
आप्टीकल रोटेशन	—1.10
एसिड मान	6.273
एस्टर मान	30.54
एस्टर मान एसीटिलिकरण के बाद	104.2

है। तेल में कार्बोनाइल यौगिकों की मात्रा 43.99, अल्कोहलों की 19.5, एस्टरों की 10.67 और सैस्क्वीटरपीनों की लगभग 13 प्रतिशत पायी गयी है [निगम, आई. सी और ढींगरा डी. आर., **परफ्यूम. एसेन्श. रिकार्ड, 51** (1960), 246]।

खाद्य समुद्री वनस्पति

भारतीय समुद्री तट पर ऐसी समुद्री वनस्पति, जो खाने के काम में लाई जा सकती है, बड़ी मात्रा में मिलती है। क्योंकि इस वनस्पति में मनुष्य और पशुओं के स्वास्थ्य के लिये आवश्यक सब खनिज काफी अधिक मात्रा में होते हैं, इसलिये यह भोजन को उत्तम संतुलन देने के लिये बहुत अच्छी तरह इस्तेमाल की जा सकती है। समुद्री घासों में खाद्य की दृष्टि से आयोडीन की उपस्थिति बहुत महत्वपूर्ण है। *औरोफाइटीज़* प्रजाति में वह काफी अधिक होती है पर उसकी सबसे अधिक मात्रा *फीयोफाइसीज़* में पाई जाती हैं। आयोडीन के अतिरिक्त मनुष्य की शारीरिक क्रिया के लिये जिन खनिज पोषकों की सूक्ष्म मात्रा में आवश्यकता होती है वे लोहा, तांबा, मैंगनीज़ और जस्त हैं। इन सबके रंच समुद्री वनस्पति में उपस्थित होते हैं। लोहे की मात्रा हरी समुद्री घासों में सबसे कम और कत्थई घासों में सबसे अधिक होती है। मैंगनीज़ की मात्रा समशीतोष्ण क्षेत्रों की समुद्री काई के अपेक्षा भारतीय समुद्री वनस्पति में अधिक होती है। समुद्री काइयों में, समझा जाता है कि, सब विटैमिन काफी मात्रा में उपस्थित होते हैं। पर इन काइयों में प्रोटीन और चिकनाई की मात्रा कम होती है। कागजी वर्ण–परीक्षा या पेपर क्रोमेटाग्राफी की विधि से परखने पर यह पाया गया है कि मनुष्य के पोषण के लिये अनिवार्य सब अमीनों एसिड, समुद्री वनस्पति की प्रोटीनों में उपस्थित होते हैं। इन एमीनो एसिडों में ट्रिप्टोफेन भी सम्मिलित है।

केन्द्रीय समुद्री मत्स्य पालन अनुसंधान केन्द्र, मंडपम, में, *ग्रेसीलेरिया एडुलिस* नामक काई से पिसान तैयार करने की एक ऐसी विधि निकाली गई है जो घरेलू उद्योग के तौर पर इस्तेमाल की जा सकती है। इस काई को सुखा कर एक पत्थर की ओखली में मीठे पानी से खूब अच्छी तरह धोया जाता है। उसको फिर सुखाया जाता है और एक औद्योगिक आटे की चक्की में पीस लिया जाता है। जो पिसान मिलता है वह बढ़िया कणों वाला, गंधहीन, हल्के पीले रंग का और स्वाद में फीका होता है।

जूट का महत्वपूर्ण संकर

भारत में जूट की दो जातियां पैदा होती हैं जिनको *ओलीटोरियस* और *कैप्सूलेरिस* कहा जाता है। अब तक यह समझा जाता था कि इन जातियों को मिला कर जूट की नई जाति पैदा नहीं की जा सकती। इन दोनों जातियों के बीच संकरण नहीं हो सकता। इनमें से *ओलीटोरियस* ऊंची धरती पर उगती है, काफी विभिन्न परिस्थितियों में पनपती है और रोगों तथा हानिकारी सूक्ष्म जंतुओं को भी एक सीमा तक सहन कर लेती है। इसका तना सीधा होता है। इसके हल्के पीले तंतु मजबूत होते हैं और बाजार में तोसा कहलाते हैं।

कैप्सूलेरिस के बीज छोटे गोल डोडियों में बन्द होते हैं। इसका रेशा सफेद और बारीक, पर कुछ कमजोर होता है। यह जाति सूखा सह लेती है, बीमारियां और हानिकारी सूक्ष्म जीव इसे हानि पहुँचाते हैं। इस पौधे

का एक अवांछित लक्षरण यह है कि उसमें बहुत–सी शाखायें फूटती है, जिससे रेशे निकालने में कठिनाई होती है और रेशे के गुरणधर्म पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

दोनों जातियों के संकररण के प्रयत्न पहले किये गये थे। उनसे जो बीज प्राप्त हुए थे वे जनक पौधों के बीजों से बोझ और रंग में हल्के थे। इन बीजों के भीतर के भ्रूरण चुचके हुए और अल्प विकसित थे। वे बोने पर उग नहीं सकते थे। अब भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, में उनके संकररण में सफलता प्राप्त की जा सकी है। इस क्रिया में *कैप्सूलेरिस* के पराग को *ओलीटोरियस* के फूल तक पहुँचाने से पहले उन पर एक्स-रे डाली गई थीं। इस संकररण से जो सुविकसित बीज प्राप्त हुए, वे बोने पर उगे और उनके पौधों से जो रेशा मिला उसके गुरण *ओलीटोरियस* और *कैप्सूलेरिस* के रेशों के गुरणों के बीच में हैं। इस नये पौधे से प्राप्त होने वाले जूट का रेशा मजबूत और सफेद होता है और यह पौधा धरती और मौसम की विभिन्न परिस्थितियों में उपज सकता है तथा इसे बीमारियों और हानिकारी सूक्ष्म जंतुओं से अपेक्षाकृत कम हानि पहुँचती है।

चीड़ की रेज़िन मात्रा पर मौसम का प्रभाव

चीड़ के वृक्षों में घाव लगा कर जो उपयोगी रेज़िन प्राप्त किया जाता है उसकी मात्रा पर मौसम के प्रभाव का एक अध्ययन 1956–58 में जी. एस. मथौडा, हिमाचल प्रदेश वन विभाग, द्वारा किया गया है। इस कार्यक्रम में चार विभिन्न स्थानों पर प्राप्य रेज़िन की मात्राओं का निश्चय किया गया था। इन स्थानों की ऊंचाई 2,300 फुट से 4,500 फुट तक थी।

अध्ययन के फलस्वरूप यह पाया गया है कि नमी, वर्षा अथवा पौधों की वृद्धि में आने वाले मौसमी परिवर्तन का रेज़िन की मात्रा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पर ताप और रेज़िन की प्राप्य मात्रा के बीच गहरा संबंध पाया जाता है और रेज़िन की मात्रा में होने वाली घटवढ़ की व्याख्या ताप की सहायता से की जा सकती है। जब दैनिक औसत ताप लगभग 80° फ. अथवा इससे अधिक होता है तो अधिकतम रेज़िन प्राप्त होता है। यदि ताप लगभग 75° फ. तक गिर जाता है तो रेज़िन की मात्रा में बहुत कमी आ जाती है। इस संबंध में 78° फ. का ताप विशेष महत्वपूर्ण जान पड़ता है। इसलिये कि उससे नीचे रेज़िन की मात्रा में अचानक कमी आती है।

घाव लगाने के बाद से अधिकतम रेज़िन मात्रा तक पहुंचने की क्रिया जिस तेजी से होती है उतनी तेज़ी से मौसम के अंत में रेज़िन की मात्रा में कमी नहीं आती। ऐसा मालूम होता है कि घाव लगने से वृक्ष को जो उत्तेजन मिलता है वृक्ष के भीतर उसके प्रति पूरी प्रतिक्रिया होने में कुछ समय लगता है [**इंडियन फारे.**, **87** (1961), 20]।

बंधनी हींग का निर्माण

बंधनी हींग के निर्मारण के लिये हींग में गोंद और गेहू के आटे की विभिन्न मात्रायें मिलायी जाती हैं। गोंद को पानी की बराबर मात्रा में मिला लिया जाता है। इसमें पिसी हुई हींग और गेहूं का आटा डालते है और मिश्ररण को अच्छी तरह मिला देते हैं। माल के जमने से पहले उसमें गम कराया मिलाया जाता है। अन्तिम माल माल के पत्येक सौ भाग के पीछे पांच भाग गम यह लिया जाता है। माल के बनने की क्रिया में अधिकतर पानी उड़ जाता है और बाजार में बिकने वाली कठोर हींग प्राप्त हो जाती है। आमतौर

सारणी–1 बंधनी हींग में रचकों का अनुपात

रचक	*भाग*
ईरानी हींग	20–25
गम अरेबिक	55–60
गम कराया	5
गेहूँ का आटा	5

पर इस हींग को बनाने के लिये ईरानी हींग काम में लायी जाती है। अन्तिम माल में विभिन्न रचकों का जो अनुपात हो सकता है वह सारणी 1 में दिया जा रहा है।

लोनी और क्षारीय धरती में हरी खाद के पौधे

लोनी और क्षारीय धरतियों की विशिष्टता निश्चित करने के लिये उनका पी–एच, मिलोमो प्रति सेंटीमीटर की शब्दावली में, विद्युत चालकता और मिट्टी में घुलनशील लक्षण प्रति दस लाख भाग नापे जाते हैं। मैसूर राज्य के हिरीयूर तालुके के कुछ भागों में बहुत से लवण और क्षार इकट्ठे हो गये हैं जिसके फलस्वरूप किसानों में घबराहट फैल गई है और बहुत से स्थानों पर खेती बंद हो गई है। 1959–60 में इस क्षेत्र का सर्वेक्षण किया गया। वहां के चार गांवों में सिंचाई के पानी और धरती मे ऊपर लिखे निश्चयन किये गये, जो सारणी 1 में दिये जा रहे हैं। यह पाया गया कि सूखे के दिनों में वहां लवण का सांद्रण धरती से जल के उड़ने के कारण तेजी से बढ़ता है और 6,000 भाग प्रति दस लाख से ऊपर पहुँच जाता है। इस स्थिति में केवल वे पौधे ही पनप सकते हैं जो इन लवणों से प्रभावित नहीं होते। यह पाया गया है कि तरवार या अवरम (*केसिया आरीकुलेटा* लिन.) और करंज (*पौंगेमिया पिन्नमेटा*

सारणी 1–मैसूर के चार गांव में ताल के पानी और धरती के निसार के लक्षण

गांव	सिंचाई ताल का पानी			धरती का निसार		
	पी.–एच	*वि. चा.*	*घु. ल. प्रति दस लाख भाग*	*पी.–एच*	*वि. चा.*	*घु. ल. प्रति दस लाख भाग*
धर्मपुरा	9.0	2.00	1400	10.0	11.5	8050
जवनकोंडनहल्ली	9.3	1.95	1365	8.5	5.5	3850
अनिमंगला	9.3	1.65	1155	9.0	3.6	2620
अम्बलगेरे	8.7	0.65	455	9.0	9.0	6300

(वि. चा. = 25° सें. पर मिलीमो सेंटीमीटर चालकता; घु. ल. = मिट्टी में कुल घुलनशील लवण, **सैलाइन एण्ड एल्कली स्वायल्स, यूस–एस–डी–ए. 1954, एग्रीकलचरल हैंडबुक 60,** मे दी हुई विधि के अनुसार)

सारणी 2 – लोनी और क्षारीय धरती में उगने वाली हरी खाद के पौधों से प्राप्त पोषक तत्व

हिन्दी	*कन्नड़*	*तमिल*	*पोषक तत्व %*		
			N_2	P_2O_5	K_2O
तरवार	थंगड़ी	अवरम	0.98	0.12	0.67
करंज	होंगे	पुंगू	1.16	0.14	0.49
ढेंचा	मुल्लुजिनेंगी	मुदिचम्बई	0.68	0.13	0.40

(N_2 = नाइट्रोजन, P_2O_5 = फास्फोरस पैंटाक्साइड, K_2O = पोटैशियम आक्साइड)

(लिन.), मेर. पर्याय (*पौंगेमिया गैल्बा* वेंट) ऐसी धरतियों में भी पनपते हैं जिनमें दूना पानी मिला कर तैयार किये गये निसार की विद्युत चालकता 8 मिलीमो प्रति सैंटीमीटर से भी अधिक और धरती तथा सिंचाई के पानी का पी–एच 8.5 से 10.0 अथवा इससे भी ऊंचा होता है। इनके अतिरिक्त ढेंचा (*सैसवेनिया बिसपिनोजा* जैक) फास्ट एंड रेंडिल पर्याय (*से. एकुलियेटा* पर्स) भी लोनी और क्षारीय भारी मिट्टी में पनपता है तथा भरे पानी और सूखे को सहन कर सकता है। ये तीनों पौधे फलीदार *लैगूमिनोसी* कुल के हैं और उत्तम हरी खाद देते हैं। इनसे प्राप्त होने वाले पोषक तत्वों के प्रति शत सारणी 2 में दिये जा रहे हैं। इन पौधों की पतियों को लोनी क्षारीय धरतियों के सुधारने के काम में लाया जा सकता है [डाउसन, एम. जे., **मैसूर एग्री. ज., 35** (1960), 109]।

नींबू कुल के फलों में विटैमिन सी

पंजाब एग्रीकल्चरल कालिज, लायलपुर, के फल विभाग में नींबू कुल के कुछ फलों में विटैमिन सी की उपस्थिति से संम्बंधित कुछ अध्ययन किये गये हैं। इन अध्ययनों से ज्ञात होता है कि किसी पौधे में विटैमिन सी की मात्रा पर उस जड़ भाग का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है जिस पर चोटी भाग की कली लगायी जाती है। यह भी पाया गया है कि अप्रौढ फलों में प्रौढ तथा अधिक पके फलों की अपेक्षा विटैमिन सी की मात्रा अधिक होती है। और यह भी कि बड़े आकार के फलों में यह विटैमिन सामान्य अथवा मध्यम आकार के फलों की अपेक्षा कम पाया जाता है [**पंजाब फ्रूटज , 23** (1960), 10]।

पृथ्वी के चारों ओर हाइड्रोजन मंडल का अस्तित्व

वायु मंडल के विषय में पिछले दिनों में जो अध्ययन किये गये हैं उनसे पता चलता है कि लगभग 300 मील की ऊंचाई पर वायु की घनता बहुत कम हो जाती है। इस ऊंचाई से ऊपर जो वायुमंडल है उसको बहिर्मण्डल या एक्सोस्फियर का नाम दिया गया है। समझा जाता है कि 300 मील की ऊंचाई पर ताप लगभग 1500° परम अथवा 1227° सें. है। इस ऊंचाई पर वायु की विरलता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि जबकि समुद्री स्तर पर एक घन सेंटीमीटर वायु के आयतन में उसके रचकों के परमाणुओं तथा अणुओं की संख्या 100 शंख (1 के सामने 19 शून्य) होती है। 300 मील की ऊंचाई पर यह संख्या केवल एक करोड़ रह जाती है, अर्थात् 10 खरब गुना कम हो जाती है। यह परिस्थिति ऐसी है जिसमें ये सूक्ष्म कण बिना किसी दूसरे कण से टकराये काफी दूर तक जा सकते हैं। यदि इन कणों का वेग लगभग 7 मील प्रति सैकिण्ड से कम होता है तो ये कुछ दूर ऊपर जाकर फिर पृथ्वी की ओर लौट आते हैं, पर यदि इनका वेग सात मील प्रति सैकिण्ड से अधिक होता है तो वे पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से मुक्त होकर ऊपर निकल जाते हैं और सदा के लिये अंतर्नाक्षाकि स्थान में चले जाते हैं।

मैरीलैंड विश्वविद्यालय के डा. एफ. एस. सिंगर ने कणों की सघनता के नये सिद्धान्त के अनुसार गणित किया है कि आक्सीजन जैसे पदार्थों के भारी परमाणु आकाश में बहुत दूर तक नहीं हो सकते। लगभग 600 मील की ऊंचाई पर हाइड्रोजन वातावरण का सबसे महत्वपूर्ण रचक हो जाता है। इसका कारण यह है कि हाइड्रोजन के परमाणु का भार अन्य सब परमाणुओं से कम होता है। हाइड्रोजन का यह मंडल, जिसमें विद्युत आवेश नहीं पाये जाते, पृथ्वी की धरातल से लगभग 20,000 मील अथवा और भी अधिक ऊंचाई तक चला गया है।

चूहों से नारियल की पौध की रक्षा

नारियल पौधशालाओं में यह पाया गया है कि अक्सर चूहे नारियल की पौधों को धरती के नीचे काट जाते हैं जिससे किसान को बहुत हानि होती है। चूहों के इन आक्रमणों को रोकने के लिये तुमकूर जिले के क्या–

तसंद्रा क्षेत्रीय सुपारी अनुसंधान केन्द्र में एक तरकीब निकाली गई है। इसमें जिस स्थान पर पौध रखी जाती है उसके चारों ओर एक छोटी खाई सी खोद कर उसे रेत से भर देते हैं और पौध की क्यारी की मिट्टी के ऊपर भी छः इंच मोटी रेत बिछा देते हैं। चूहे इस रेत में होकर बिल नहीं खोद पाते। इसलिये वे पौध तक पहुंचने में असमर्थ रहते हैं और पौध सुरक्षित हो जाती है।

सूर्य की गर्मी उपयोग करने की नई रीति

इसराइल की राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला के डा. हैनरी टैबोर, जो सूर्य ऊर्जा उपयोग के एक अधिकारी वैज्ञानिक हैं, ने सूर्य की शक्ति को पानी में भंडारित करने की एक विधि का सुझाव दिया है। इस योजना के अनुसार $\frac{2}{3}$ मील लम्बे और $\frac{2}{3}$ मील चौड़े एक हौज की आवश्यकता होगी। इस हौज में पानी भरा जायेगा और उसके पेंदी के निकट कुछ लवण घोल दिये जायेंगे। जो सूर्य की किरणें इस घोल की तह तक पहुंचेगी उनकी गर्मी इसके द्वारा सोख ली जायेगी। यदि हौज का पानी शांत रहेगा तो ऊपर की पानी की सतह जितनी गर्मी सोखेगी उतनी ही उससे विकरित होगी। नीचे की तह में गर्मी सुरक्षित रही आयेगी। समझा जाता है कि इस विधि से जो ऊर्जा सूर्य से प्राप्त की जायेगी वह अब तक अन्य उपायों द्वारा प्राप्त की गई सौर ऊर्जा से सस्ती पड़ेगी।

गधक के तेजाब से धातु का संरक्षण

कौन्टीनेन्टल आयल कम्पनी, पौनका सिटी, ओकला., के वैज्ञानिकों ने अमेरिकन इंस्टीट्यूट आफ कैमिकल इंजीनियर्स की एक बैठक में बताया है कि धातुओं को यदि धन-आवेश दे दिया जाता है तो तेजाब उन्हें नहीं काटता। इसका कारण यह पाया जाता है कि धन आवेश की उपस्थिति धातु में निष्क्रियता उत्पन्न करती है। धातु की ऐसी संरक्षा को एनोडिक या धनाग्रीय संरक्षा कहते हैं। संरक्षा की यह विधि गंधक तेजाब उद्योग में सफलतापूर्वक इस्तेमाल की जा रही है।

एक नई स्वर्ण मिश्र धातु

रूस के धातु वैज्ञानिकों ने एक नई स्वर्ण मिश्रधातु तैयार की है। कहा जाता है कि यह मिश्रधातु इस्पात के समान कठोर है और इससे आसानी से विभिन्न वस्तुयें बनाई जा सकती हैं। इस मिश्रधातु में सोना, तांबा, मेंगनीज़ निकेल, जस्त और कैडमियम उपस्थिति होते हैं। यह आवसीकृत नहीं होती और इसकी दमक कायम रहती है। विशेषज्ञों का विचार है कि यह नई मिश्रधातु इलैक्ट्रोनिक्स और रेडियो उद्योगों में व्यापक रूप से इस्तेमाल की जा सकेगी।

एथीलीन डायक्लोराइड का निर्माण

अनाज के भंडारों में कीडों के विनाश के लिये एथीलीन डायक्लोराइड की वाष्प बहुत उपयोगी पायी गयी है। एथीलीन डायक्लोराइड पोलीविनाइल क्लोराइड और कोपालीमरों के निर्माण के लिये विनाइलक्लोराइड तैयार करने के काम में लाया जाता है। यह एक शक्तिशाली घोलक हैं और अपने इस गुण कारण घोलक निसार, धातुओं पर से चिकनाई हटाने और बुनाई उद्योग में भी इस्तेमाल किया जाता है।
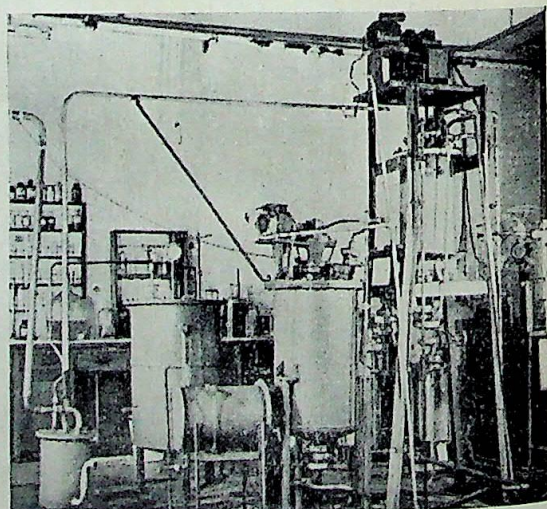
चित्र 1—एथीलीन डायक्लोराइड निर्माण का प्रयोगी उत्पादन संयंत्र
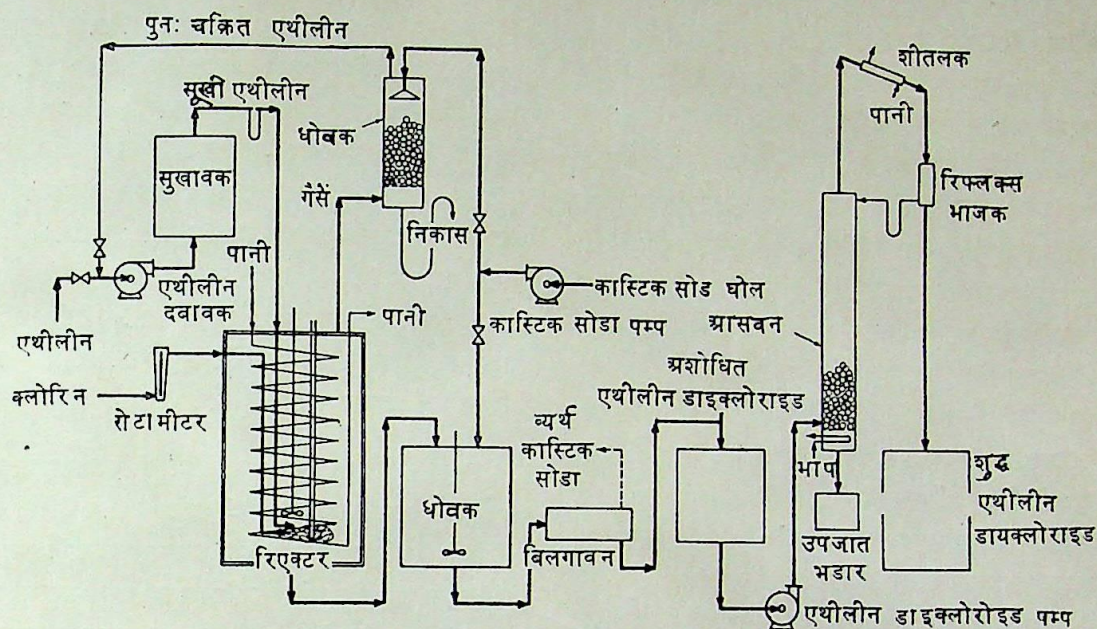
चित्र 2—एथीलीन डायक्लोराइड निर्माण का प्रवाह—चित्र

राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला, पूना, में एथीलीन डायक्लोराइड बनाने की एक विधि विकसित की गई है। इसका पेटेन्ट आवेदन नम्बर 66,836 है। इस निरंतर विधि में एथीलीन डायक्लोराड तैयार करने के लिये सूखी एथीलीन और क्लोरीन गैसों को एक बंद टंकी में प्रतिक्रिया के लिये पहुंचाया जाता है। टंकी के भीतर के पदार्थों को हिलाने की व्यवस्था होती है। प्रतिक्रिया द्रव एथीलीन डायक्लोराइड के माध्यम में होती है और माल एक स्थायी स्तर व्यवस्था की सहायता से निरंतर बाहर निकलता है। अशोधित द्रव को एक सीसे की तह चढ़े पात्र में धोकर क्लोरीन के आधिक्य और तेजाब के रंचों को अलग कर दिया जाता है। इस क्रिया में पानी और एथीलीन डायक्लोराइड का जो इमल्शन बनता है उसे एक लोहे के पात्र में रचक बिलगाने के लिये भेजा जाता है। धोये हुये माल को एक मुलायम इस्पात के उपकरण में शुद्ध एथीलीन डायक्लोराइड प्राप्त करने के लिये आसवित किया जाता है। इस विधि में जो प्रतिक्रिया व्यवस्था काम में लाई जाती है, उससे माल अधिक बनता है, उसकी देखभाल पर लागत कम आती है और काम में उसकी ओर कम ध्यान रखना पड़ता है।

इस विधि के आधार पर प्रयोगशाला में 14,000 रुपये की लागत से जो प्रयोगी संयंत्र लगाया गया है वह चौबीस घंटे में 2 हंडरवेट एथीलीन डायक्लोराइड तैयार कर सकता है। 2 टन प्रति दिन एथीलीन डायक्लोराइड व्यापारिक स्तर पर तैयार करने के योग्य कारखाना बनाने के लिये लगभग 1,10,000 रुपये की अनावर्ती पूंजी की आवश्यकता होगी और लगभग इतनी ही पूंजी काम चलाने के लिये चाहिये। एथीलीन डायक्लोराइड की उत्पादन लागत 36 नये पैसे प्रति पौंड अनुमानी जाती है।

आसाम में घरेलू और छोटे उद्योग

आसाम राज्य में घरेलू उद्योगों में प्रशिक्षण देने के लिये गोहाटी में जो संस्थान काम कर रहा है उसमें बढ़ईगीरी, लोहारी, चर्मकारी, बांस और बेत के काम, गुड़िया और खिलौने बनाने, इलैक्ट्रोप्लेटिंग और बिजली

की वायरिंग का काम सिखाया जाता है। राज्य में प्रशिक्षण–सह–उत्पादन के 12 केन्द्र हैं, जिनमें साबुन बनाने, घड़ियों की मरम्मत करने, लोहारी, बढ़ईगिरी और छाते के हैंडिल बनाने के काम की शिक्षा दी जाती है। गोहाटी और ढेकियाजूली में दो औद्योगिक बस्तियां बनाई जा रही हैं। जापानी विशेषज्ञों की सहायता से गोहाटी में बेंत और बांस की दो मिलें लगाई जा रही हैं। एक योजना के अनुसार इस बात का प्रबन्ध किया जा रहा है कि कारीगरों को वस्तुयें बनाने के लिये नई विधियों और औजारों के इस्तेमाल का प्रदर्शन भी दिया जाये। 1956–57 से गोहाटी का केन्द्रीय स्टोर और इम्पोरियम छोटे उद्योगों, कारीगरों और सहकारी समितियों को पीतल, लोहा, तांबा, जस्त आदि कच्चे माल प्राप्त करने की सुविधा दे रहा है। गोहाटी में एक डिज़ाइन अनुसंधान केन्द्र भी बनाया जा रहा है।

केंद्रीय वैज्ञानिक उपकरण संगठन

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान बोर्ड ने अपनी नवम्बर 1960 की बैठक में सैंट्रल सांइटिफिक इन्स्ट्रूमेंट्स आर्गेनाइज़ेशन के विषय में एक व्यापक योजना स्वीकार की है। इस योजना पर अनावर्ती खर्च 71.75 लाख और आवर्ती खर्च 53.75 लाख वार्षिक आयेगा। इस संगठन का प्रारम्भ अक्टूबर 1959 में किया गया था।

केंद्रीय वैज्ञानिक उपकरण संगठन निम्नलिखित कार्य करेगा : (1) शिक्षण, अनुसंधान, उद्योग, अनिवार्य सेवाओं और दूसरे कार्यों के लिये वैज्ञानिक उपकरणों की माँग और उसकी पूर्ति का सर्वेक्षण और निश्चयन, तथा इस उद्योग के विकास के लिये एक व्यवस्थित कार्यक्रम तैयार करना ; (2) उपकरणों के निर्माण के लिये आवश्यक प्रौद्योगिकों और विशेषज्ञ व्यक्तियों के उच्च प्रशिक्षण का प्रबन्ध करना; (3) उपकरण उत्पादन के लिये डिजाइन और विकास इकाइयां तथा केन्द्र स्थापित करना और ऐसी विधि तथा कौशल के विकास की सुविधायें प्रदान करना जिनके द्वारा उपकरणों की डिजाइन, समापन, बारीकी और उत्तमता में सुधार किया जा सके, उपकरणों के लिये विशिष्टतायें और नक्शे तैयार किये जा सकें तथा उपकरणों के आदिनमूनों को परखने के लिये विधियां तथा यंत्रों का विकास किया जा सके; और (4) ऐसी सेवा का प्रबन्ध करना जो उपकरणों की देख भाल तथा मरम्मत कर सकें और ऐसे चलते–फिरते दलों का संगठन करना जो भारी और मंहगे उपकरणों की मरम्मत वहीं जाकर कर सकें, जहां वे लगे हुये हों।

समझा जाता है कि इस सम्बन्ध में प्रौद्योगिक सहायता के लिये स्विस फाउन्डेशन 5 साल के लिये 8 स्विस विशेषज्ञों की सेवायें संगठन को प्रदान करेगी। यह फाउन्डेशन प्रशिक्षण केंद्र के लिये आवश्यक उपकरण और मशीनें आदि भी होगीं। इनका मूल्य लगभग 10 लाख स्विस फ्रेंक होगा। ऐसा प्रस्ताव भी है कि उपकरणों के डिजाइन और विकास के लिये संयुक्त राष्ट्र स्पेशल फंड सहायता द्वारा विदेशी प्रौद्योगिक विशेषज्ञों की सेवायें प्राप्त की जायें।

उत्तर प्रदेश लघु उद्योग निगम, कानपुर

उत्तर प्रदेश में छोटे उद्योगों को सहायता, सलाह, संरक्षा और प्रोत्साहन देने के लिये कानपुर में उत्तर प्रदेश लघु उद्योग निगम लिमिटेड बनाया गया है। यह निगम छोटे उद्योगों के लिये सरकार के आर्डर प्राप्त करने में उनकी सहायता कर रहा है। सरकार को जिस प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता होती है निगम उस प्रकार की वस्तुएं बनाने वालों को उसकी सूचना देता है। ये सूचना उन उत्पादन इकाइयों को दी जाती हैं जिन्होंने अपने नाम इस निगम में लिखा दिये हैं। जनवरी 1961 तक मेरठ कमिश्नरी से 47, इलाहाबाद से 109, कुमाऊं और उत्तर खण्ड से 2, लखनऊ से 21, वाराणसी से 15, आगरा से 57, झांसी से 7, रुहेलखण्ड से 24, फैजाबाद से 3 और गोरखपुर से 5 उद्योगियों ने अपने नाम दर्ज कराये हैं। इस काम के लिये निश्चित फार्मों पर

अरजी दी जाती है और निगम आवश्यक जांच पड़ताल के बाद उद्योगी का नाम अपनी सूची में लिख लेता है। अप्रैल 1960 से इस कारपोरेशन के द्वारा लघु उद्योगियों को 2,25,000 रुपये से अधिक के सरकारी ठेके प्राप्त करने में सहायता दी जा चुकी है।

नन्दिनी चूना—पत्थर खदानों का यंत्रीकरण

लोहे के अयस्क से धमन–भट्टी में लोहा निकालते समय उसे चूना–पत्थर और कोक के साथ गर्म किया जाता है। गर्मी से चूने–पत्थर में से जो कार्बन डायआक्साइड निकलती है वह भट्टी के भीतर पिघले पदार्थ को अपने ऊपर निकलने के प्रयत्न में खदबदाती है। यह पत्थर खनिज के गलन विन्दु को कम करता है और इसका कैल्शियम भाग खनिज के अलौह अंश में के साथ मिल कर धातुमल बनाता है और इस प्रकार लोहा बिलगाने में सहायक होता है। भिलाई के कारखाने को चूना–पत्थर नन्दिनी खदानों से भेजा जाता है। इस पत्थर को निकालने के लिये अब खदान में मशीनें लगाई गई हैं। यहां से 7½ लाख टन पत्थर प्रति वर्ष रेल द्वारा भिलाई के कारखानों को भेजा जायेगा।

प्रशिक्षित उद्योगियों को सहायता

उत्तर प्रदेश में औद्योगिक प्रशिक्षण–सह–उत्पादन केन्द्रों में जो लोग शिक्षा पाते हैं उनको व्यवसाय में जमाने के लिये एक योजना चलाई गई है। इसमें शिक्षार्थियों को, जिन दिनों वे काम सीख रहे होते हैं और उन्हें छात्रवृत्ति मिलती होती है, इस बात के लिये राजी किया जाता है कि वे नियमित रूप से एक निश्चित रकम बचायें, जिसका उपयोग वे अपना प्रशिक्षण समाप्त कर लेने के बाद सहकारी समितियों के संगठन में पूंजी के रूप में तथा औजार और दूसरा सामान खरीदने के लिये कर सकें। गांव के छोटे कारीगरों और प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियों को आर्थिक सहायता देने के नियम अधिक उदार बनाये गये हैं। उनके अनुसार अब उन्हें व्यक्तिगत जमानत पर बिना उनकी स्थिति की जांच–पड़ताल किये सहायता दी जा सकती है। इसके अतिरिक्त एक ऐसी योजना पर विचार किया जा रहा है जिनके अन्तर्गत इन उद्योगियों को प्रशिक्षण के बाद कुछ दिन ऐप्रेन्टिस के तौर पर रखा जा सकेगा। इस काम के लिये उन्हें छः महीने तक किसी सहकारी समिति अथवा औद्योगिक केन्द्र के साथ काम करने का अवसर दिया जायेगा। इससे उन्हें अपने व्यवसाय का कुछ अनुभव प्राप्त हो जायेगा और वे स्वतन्त्र रूप से उसका आरम्भ कर सकेंगे।

बिजली करघों के लिये परमिट

भारत सरकार ने बिजली के करघों को परमिट देकर अधिकृत करने की जो नीति बनाई है और जिसका उल्लेख 5 नवम्बर और 26 दिसम्बर, 1960, की प्रेस विज्ञप्तियों में किया गया है, उसके अनुसार 31 अक्टूबर, 1960, को जो बिजली के करघे बिना परमिट के काम कर रहे थे, उन्हें टैक्सटाइल कमिश्नर, (पावरलूम ब्रांच) बम्बई, को आवेदन पत्र देकर परमिट प्राप्त कर लेना चाहिये था। इस आवेदन पत्र के साथ समुचित केन्द्रीय उत्पादन कर अधिकारी के प्रमाणपत्र और समुचित रकम की खजाने की रसीद भेजी जानी ज़रूरी थी। इससे जनता को जो असुविधा होती है उसे दूर करने के लिये अब ऐसी व्यवस्था की गई है कि ये आवेदन पत्र टैक्सटाइल कमिश्नर के विभिन्न क्षेत्रीय कार्यालयों को भेजे जा सकते हैं। ये कार्यालय अब इन आवेदन पत्रों को स्वीकार करेंगे और परमिट प्रदान करेंगे। जिन लोगों ने अभी टैक्सटाइल कमिश्नर से अपनी बिजली करघे का परमिट नहीं लिया है, वे अपने क्षेत्र के कार्यालय में आवेदन पत्र भेज सकते हैं।

मुर्गियों के लिये सस्ती प्रोटीन

हिन्दुस्तान ऐन्टीबायोटिक्स के कारखाने में पैनिसिलीन बनाने की क्रिया में जो व्यर्थ पदार्थ बचता है वह मुर्गियों के चुग्गे में प्रोटीनधारी पूरक के तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है। यह पैनिसिलीन व्यर्थ विषैला नहीं होता। इसमें 30 प्रति शत प्रोटीन होती

है और विटैमिन भी काफी मात्रा में उपस्थित होते हैं। जो लोग मुर्गी पालते हैं अथवा मुर्गियों का चुग्गा बनाते हैं वे इस व्यर्थ का इस्तेमाल करके चुग्गों की लागत में बचत कर सकते हैं। यह पैनसिलीन व्यर्थ हिन्दुस्तान ऐन्टीबायोटिक्स, पिम्परी, पूना, से सस्ते दामों में प्राप्त किया जा सकता है।

चन्द्रपुरा-मुरी-रांची रेल

केंद्रीय रेल मंत्री श्री जगजीवन राम ने 22, दिसम्बर 1960 को रांची–चन्द्रपुरा रेल की बड़ी लाइन का उद्घाटन किया। यह लाइन दक्षिण बिहार के पत्थर कोयला क्षेत्र को रूरकेला और भिलाई के लोहे के कारखानों से जोड़ने के लिये बनायी गयी है। यह 83 मील लम्बी है और इस पर 23.5 करोड़ रुपये की लागत आई है। यह पहाड़ी क्षेत्रों में से बल खाती हुई पठारों, नदियों, गहरी घटियों तथा खड्डों को पार करती हुई गुजरती है। इस लाइन पर होकर बोकारो, रांची, रूरकेला और भिलाई के बीच माल सीधा आ जा सकेगा। आशा की जाती है कि यह भारतीय रेलों की सबसे अधिक व्यस्त लाइनों में से एक हो जायेगी।

उत्तर प्रदेश में औद्योगिक बस्तियां

उत्तर प्रदेश में विभिन्न स्थानों पर लघु उद्योगियों की सुविधा के लिये औद्योगिक बस्तियां बनाई जा रही हैं। मैदानी क्षेत्र में ऐसी पांच बस्तियां कानपुर, आगरा, सहारनपुर जिले में देवबंद, वाराणसी जिले में काशीविद्यापीठ और मेरठ जिले में लोनी में बनाई गई हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में चार औद्योगिक बस्तियां नैनीताल जिले में भीमताल, पौड़ी गढवाल जिले में श्रीनगर और टेहरी गढ़वाल जिले में टेहरी तथा अलमोड़े में बनाई जा रही है। इनके अति पौड़ी गढ़वाल जिले में रिक्त कोटद्वार नामक स्थान पर भी एक ऐसी बस्ती बनाने पर विचार किया जा रहा है।

आसाम में गैस आधारित उद्योग

समझा जाता है कि भारत सरकार ने तीसरी पंचवर्षीय योजना में आसाम में बहुत से गैस आधारित उद्योगों की स्थापना की स्वीकृति दे दी है। ये उद्योग सरकारी और गैरसरकारी क्षेत्रों में होंगे। सरकारी क्षेत्र के कारखाने बनाने पर लगभग 29 करोड़ रुपये की लागत आयेगी। इस क्षेत्र में एक कारखाना उर्वरक बनायेगा जिसकी क्षमता 100 टन प्रति दिन होगी। इसके अतिरिक्त एक बड़ा, बिजलीघर गैस साफ करने का एक कारखाना और घरेलू उपयोग के लिये गैस बांटने की योजना भी इस कार्यक्रम में शामिल हैं। गैर सरकारी उद्योगों में पोलीएथीलीन संश्लेषित रबर, काजल, पैट्रोलियम कोक आदि उद्योग होंगे। आशा की जाती है कि ये सब उद्योग 3.8 करोड़ घन फुट गैस प्रति दिन उपयोग करेंगे।

पैरा-अमीनोफीनोल और 2:4-डाइअमीनोफीनोल का उत्पादन

भारतीय पेटेन्ट नं० 53,195 और 60,865

अमीनोफीनोलों का उपयोग फोटोग्राफी में डिवलपर के तौर पर, रंगों संश्लेषण में-विशेषतया ऐज़ो और सल्फर रंगों के-और औषधि निर्माण उद्योग में फिनैसीटीन, मिथैसीटीन आदि जैसे विभिन्न यौगिक तैयार करने के लिये माध्यमिकों के तौर पर किया जाता है। अभी तक ये फीनोल देश में नहीं तैयार किये जाते। इनकी मांग बाहर से माल मंगा कर पूरी की जाती है। क्योंकि ये पदार्थ दूसरे विभिन्न पदार्थों के साथ मिले हुये विभिन्न व्यापारिक नामों से आयात होते हैं इसलिये उनकी आयात मात्राओं की ठीक ठीक सूचना प्राप्य नहीं है। पिछले दिनों उद्योगों के विकास और नियंत्रण अधिनियम के अनुसार देश में एक फर्म को 50,000 पौंड पैरा-अमीनोफीनोल वार्षिक बनाने का लायसैंस दिया गया है।

चित्र 1-मैंटा-डाइनाइट्रोबैंजीन का अवकरण करने के लिये सैल

निर्माण विधि-विभिन्न रासायनिक बनावटों की अमीनोंफीनोल उसी बनावट की नाइट्रोबैन्ज़ीनों से विभिन्न रासायनिक प्रतिक्रियाओं द्वारा तैयार किये जा सकते हैं। पर इन विधियों में जो माध्यमिक रासायनिक पदार्थ काम में लाये जाते हैं वे मंहगे होते हैं और उन्हें तारकोल से प्राप्त आरम्भिक रासायनिक पदार्थों से अनेक क्रियाओं द्वारा तैयार किया जाता है।

यह पाया गया है कि नाइट्रोबैन्ज़ीन और मैंटा-डाइनाइट्रोबैन्ज़ीन का विद्युतविश्लेष्य अवकरण करके उनसे संगत अमीनोफीनोल सीधे प्राप्त हो जाते हैं: और यह भी, कि यह विधि उनके निर्माण के लिये साधारण रासायनिक विधियों की अपेक्षा अधिक अच्छी रहती है। इसी आधार पर कराईकुडी स्थित केन्द्रीय विद्युतरासायनिक अनुसंधान संस्थान में खोजबीन की गई है, और पैरा-डाइनाइट्रोबैंज़ीन तथा 2:4-डाइनाइट्रोबैन्ज़ीन से विद्युतविश्लेष्य विधि द्वारा क्रमशः पैरा-अमीनोफीनोल और 2:4 डाइ-अमीनोफीनोल बनाने की विधि विकसित की गई है। इस विधि में आवश्यक नाइट्रोन्बैज़ीन को एक विश्लेषण सैल के भीतर तनु सलफ्यूरिक एसिड में
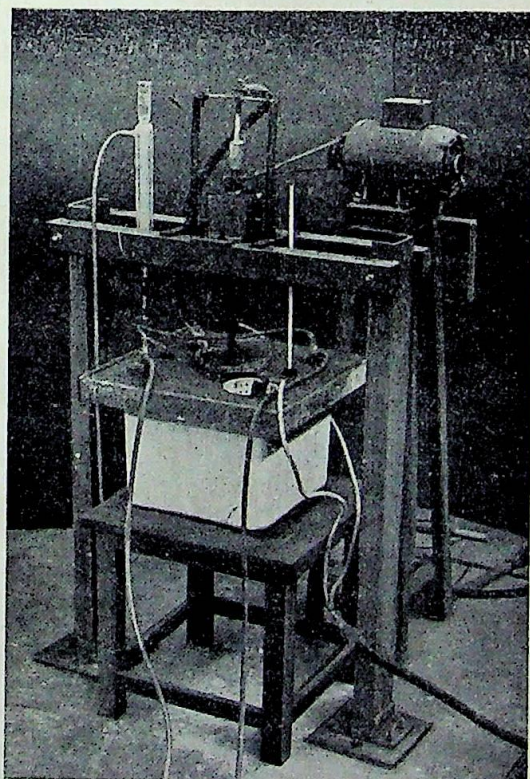
छितराया जाता है। इसी सैल को दोनों ग्रमीनोफीनोलों के उत्पादन के लिये काम में लाया जा सकता है। सैल में पारा चढ़े हुये तांबे ग्रथवा मौनेल मिश्रधातु के घूमते हुये कैथोड इस्तेमाल किये जाते हैं ग्रौर ऐनोड के लिये सरन्ध्र पात्र डायफ्रामों के साथ छेददार सीसे की चादर काम में लाई जाती है।

पैरा–ग्रमीनोफीनोल तैयार करने के लिये सैल का वोल्टेज 3.8–4.6 वोल्ट, हौदी का ताप 80–85° सैं. ग्रौर विद्युतधारा का घनत्व 20 एम्पियर प्रतिवर्ग डैसीमीटर रखा जाता है। ऐसी स्थिति में कच्चे माल पर 65 से 73 प्रति शत तैयार माल प्राप्त होता है।

2:4–डाइग्रमीनोफीनोल तैयार करने के लिये सैल का वोल्टेज 3.8–4.8 वोल्ट, हौदी का ताप 100° सैं. ग्रौर विद्युत–धारा का घनत्व 30 एम्पियर प्रति वर्ग डैसीमीटर रखा जाता है। इस प्रकार कच्चे माल से 50–56 प्रति शत माल बनता है।

इस विधि में निम्नलिखित लाभ हैं: (1) इसमें जो तेजाब इस्तेमाल किया जाता है उसकी सान्द्रता कम होती है ग्रौर वह बार बार काम में लाया जा सकता है। (2) बिजली का घनत्व ग्रधिक होने के कारण विद्युतविश्लेषण में कम समय लगता है ग्रौर इसके फलस्वरूप इलैक्ट्रोडों पर कम लागत लगानी होती है। (3) घूमने वाले कैथोड़ों के इस्तेमाल से ग्रधिक धारिता वाले सैलों का निर्माण सरल हो जाता है ग्रौर वह स्थिर कैथोड उपयोग करने वाले सैलों की ग्रपेक्षा कम जगह घेरते हैं ग्रौर (4) विधि सरल है तथा कच्चे माल ग्रपेक्षाकृत सस्ते हैं।

इन दोनों पदार्थों की उत्पादन विधियों को एक पौंड नाइट्रोबैन्जीन प्रति घान ग्रवकरित करके परखा जा चुका है। 3 पौंड प्रति घान ग्रवकरण के लिये बड़े सैलों पर काम किया जा रहा है। पैरा–ग्रमीनोफीनोल ग्रौर 2:4–डाइग्रमीनोफीनोल निर्माण के लिये कारख़ाने में जिन मशीनों की ग्रावश्यकता होगी, वे हैं: रेक्टीफायर, वेलनाकार सैल, स्टेनलैस स्टील के फिल्टर प्रैस, निर्वात सुखावक भाप वायलर, निर्वात वाष्पन इकाई, शीतन इकाई ग्रौर शीशे की चादर चढ़ी टंकियां।

जो लोग इस विधि के व्यापारिक विकास में रुचि रखते हों, वे सैक्रेटरी, नेशनल रिसर्च डिवलपमैंट कारपोरेशन, मंडी हाऊस, लिटनरोड, नई दिल्ली, से पत्र–व्यवहार करें।

संदर्भ कोष

इंडियन फारे.	इंडियन फारेस्टर (भारतीय वनपालक), देहरादून
ज. रिसर्च नेश. ब्यूरो स्टैंडर्डस	जरनल ग्राफ रिसर्च, ग्राफ नेशनल ब्यूरो ग्राफ स्टैंडर्डस (नेशनल, ब्यूरो ग्राफ स्टैंडर्डस की ग्रनुसंधान पत्रिका), वाशिंगटन
ज. साइं. इंडस्ट्रि. रिसर्च	जरनल ग्राफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च (वैज्ञानिक ग्रौर ग्रौद्योगिक ग्रनुसंधान पत्रिका), नई दिल्ली
ज. सोसा. नैव. इंजीर्स	जरनल ग्राफ दि सोसायटी ग्राफ नैवल इंजीनियर्स (नव–सैना इंजीनियरों की सोसायटी की पत्रिका),
पंजाब फ्रूट ज.	पंजाब फ्रूट जरनल (पंजाब फल पत्रिका), लायलपुर
परफूयूम. एसेंश. ग्रायल रिकार्ड	परयूफमरी एण्ड एसेंशल ग्रायल रिकार्ड (सुगंध ग्रौर उड़नशील तेल ग्रभिलेख), लंडन
पेन्ट इंडिया	पेन्ट इंडिया
प्रोसी. ग्रमे. एकाडे. ग्रार्ट्स सांइ.	प्रोसीडिंग्ज़ ग्राफ ग्रमेरिकन एकाडेमी ग्राफ ग्रार्ट्स एण्ड साइंस (कला ग्रौर विज्ञान की ग्रमरिकन ग्रकादमी की कार्यवाही), बोस्टन
मैसूर एग्री. ज.	मैसूर एग्रीकलचरल जरनल (मैसूर कृषि पत्रिका), बंगलौर
वर्ल्ड सीड कम्पे. न्यूज	वर्ल्ड सीड कम्पेन न्यूज (विश्व बीज ग्रांदोलन समाचार,) फूड एण्ड एग्रीकलचर ग्रार्गेनाइजेशन, रोम

लेखकों से निवेदन

विज्ञान प्रगति में प्रकाशनार्थ ऐसे लेख आमंत्रित किये जाते हैं जिनका सम्बन्ध किसी वैज्ञानिक या औद्योगिक मौलिक अनुसंधान, विज्ञान या औद्योगिक विकास के किसी क्षेत्र के सर्वेक्षण अथवा किसी ऐसे विषय से हो जिससे विज्ञान के प्रसार में सहायता मिलती हो।

लेख अधिकारी व्यक्तियों की आलोचना के बाद प्रकाशित किये जाते हैं।

लेख कागज के एक ओर एक तिहाई हाशिया छोड़ कर साफ अक्षरों में लिखा जाना चाहिये। हाथ से लिखे हुये लेखों की एक प्रति भेजी जा सकती है पर टाइप किये हुये लेखों की दो प्रतियां आने से कार्यालय को विशेष सुविधा रहेगी। लेख अंग्रेजी में भी भेजे जा सकते हैं।

प्रत्येक लेख के आरम्भ में उसका सारांश, हिन्दी तथा अंग्रेजी में भी दिया जाना चाहिये। सारांश 200 शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिये और उसमें लेख के उद्देश्य तथा मुख्य निष्कर्षों का उल्लेख होना चाहिये।

लेखों में फुट नोट का उपयोग यथासम्भव नहीं किया जाना चाहिये।

सारणियां : अलग कागजों पर टाईप की जानी चाहिये। उन पर क्रमानुसार संख्या दी जानी चाहिये और उनके शीर्षक संक्षिप्त होने चाहिये। सारणियों के स्तम्भ शीर्षक छोटे होने चाहिये। शून्य फल और जानकारी के अभाव को स्पष्ट दर्शाया जाना चाहिये। जो जानकारी सारणी के रूप में दी गई है उसे ग्राफ के रूप में दुबारा नहीं दिया जाना चाहिये।

चित्र : सब चित्रों पर क्रम संख्या और उनके शीर्षक होने चाहिये। रेखाचित्र इण्डियन इंक से सफेद ड्राइंग के कागज (ब्रिसटल बोर्ड), सैलोफेन या ट्रेसिंग क्लोथ पर बने होने चाहिये। फोटोग्राफ ग्लौसी कागज पर होने चाहिये।

संदर्भ : साहित्य संदर्भ क्रमिक रूप से लेख के अन्त में दिये जाने चाहिये। लेख के अन्दर उनका संकेतांक पंक्ति के ऊपर की ओर लिखा जाना चाहिये। संदर्भ में लेखक का नाम, पत्रिका का (यथा सम्भव) पूरा नाम, जिल्द, (कोष्ठक में) वर्ष, और पृष्ठ संख्या दी जानी चाहिये। उदाहरण के तौर पर, राजन, के.एस. और गुप्ता, जे., **जरनल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च, 18 बी** (1959), 460–463।

पुनर्मुद्रण या रिप्रिण्ट : प्रत्येक लेख के 25 पुनर्मुद्रण बिना मूल्य दिये जाते हैं। अधिक प्रतियां लागत मात्र पर प्राप्त की जा सकती हैं।

CONTENTS

श्री वी. एन. शास्त्री, कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली, द्वारा
एशिया प्रेस, दिल्ली-6, में मुद्रित और प्रकाशित

Regd. No. D 464

विज्ञान प्रगति

VIGYAN PRAGATI

अग्रहायण 1883 : NOV. – DEC. 1961

इस अंक में

THE COUNCIL OF SCIENTIFIC & INDUSTRIAL RESEARCH, NEW DELHI

कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली

विज्ञान प्रगति

विज्ञान प्रगति घरेलू और छोटे उद्योगों में लगे हुए लोगों की आवश्यकताओं को अपने सामने रखता है। वह राष्ट्रभाषा के जरिये से यह बताने का प्रयत्न करता है कि देश भर में फैली कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च की प्रयोगशालाएं और दूसरी अनुसंधान संस्थाएं उनके लिए क्या काम कर रही हैं। विज्ञान प्रगति में छोटे उद्योगों के सम्बन्ध में की गई खोजों के उन चुने हुए नतीजों का संक्षिप्त वर्णन दिया जाएगा जो तुरन्त काम में लाये जा सकेंगे। पेटेण्टों के साहित्य की छानबीन की जाएगी और ऐसी ईजादों और आविष्कारों की सूचना विज्ञान प्रगति में दी जाएगी, जो छोटे उद्योग-धन्धों में लगे हुए लोगों के काम में आ सकती हो। विज्ञान प्रगति छोटे उद्योग-धंधों में लगे हुए लोगों की अड़चनों और कठिनाइयों को समझना चाहता है और उन्हें अपने प्रश्न भेजने का निमन्त्रण देता है। उनके प्रश्नों के उत्तर प्रश्न विशेष के बारे में खोजबीन करने वाली संस्था या खोजबीन करने वाले व्यक्ति से प्राप्त करके दिए जायेंगे। इसमें वैज्ञानिक साहित्य का विमर्श रहेगा। अनुसंधान-केन्द्रों के विषय में सूचनायें रहेंगी, और ऐसी प्रगतियों के समाचार रहेंगे जिनका सम्बन्ध छोटे उद्योग-धंधों से हो। अनुसंधान-समाचार सेवा के लिए विज्ञान प्रगति देश की अनुसंधान संस्थाओं की मदद पर निर्भर है। वह देश में फैले हुए उन संगठनों के सहयोग पर निर्भर है जो वर्षों से घरेलू और छोटे उद्योग-धन्धों की भलाई के लिए काम कर रहे हैं और जो देश के उद्योग के इस बहुत महत्वपूर्ण हिस्से की समस्याओं को बड़ी गहराई के साथ जानते और समझते हैं।

विज्ञान प्रगति

वर्ष 10, अंक 11, आग्रहायण 1883

विषय सूची

'विज्ञान प्रगति' प्रति मास प्रकाशित होता है। कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च, लेखकों के कथनों और मतों के विषय में किसी प्रकार की जिम्मेदारी नहीं लेती। 'विज्ञान प्रगति' में प्रकाशित होने के लिए लेख और विज्ञापन, विमर्श के लिये पुस्तकें, और चंदे आदि की रकम 'विज्ञान प्रगति', पब्लिकेशन्स डायरेक्टोरेट, कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च, रफी मार्ग, नई दिल्ली-1, के पते पर भेजी जानी चाहिये।

प्र. सम्पादक : बी. एन. शास्त्री स. सम्पादक : रामचन्द्र तिवारी
वार्षिक मूल्य : 5 रुपये प्रति अंक : 50 नये पैसे

कड़ुवी तुरई (लूफ्फा ग्रेविग्रोलैंस राक्सब.) के उपयोग की सम्भावना

डी. एस. भाकुनी, वी. एन. शर्मा और के. एन. कौल
राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान, लखनऊ

(प्राप्ति – 17 फरवरी, 1961)

Possibility of Utilization of Bitter Principles of *Luffa graveolens* Roxb. by D.S. Bhakuni, V.N. Sharma and K.N. Kaul, National Botanic Gardens, Lucknow.

The mature fruits of *Luffa graveolens* Roxb have been found to contain two bitter principles identified as *cucurbitacin B* and *E*, the former being present in unusually high percentage in the mesocarp. The cucurbitacin group, because of its recently reported antitumour activity, has acquired great importance.

कड़ुवी तुरई के पूर्ण विकसित फलों में से दो कड़ुवे पदार्थ, जो *कुकुरविटैसीन बी.* और *ई.* के रूप में पहचाने गये हैं, उपस्थित हैं। इनमें से पहला मीज़ोकार्प में असाधारण रुप से अधिक मात्रा में विद्यमान है। क्योंकि अभी हाल में कुकुरविटैसीन वर्ग के कुछ पदार्थ अर्बुद की चिकित्सा में उपयोगी पाये गये हैं, इसलिये इनका महत्व बहुत बढ़ गया है।

वनस्पति जगत के *कुकुरविटैसी* कुल में *लूफ्फा* प्रजाति का स्थान अपने औषधिगुणवान रचकों के कारण महत्वपूर्ण है। इसके कड़ुवे तत्व भारतीय चिकित्सा प्रणाली में अपने तीव्र दस्तावर और वमनकारी गुणों के लिये प्रसिद्ध हैं[1]। आधुनिक चिकित्सा प्रणाली में भी कोलोसिंथ, इलेटेरियम, ब्रायोनिया आदि जैसी कुछ दस्तावर औषधियां *कुकुरविटैसी* कुल के *सिट्रुलस कोलोसिन्थ* और *इकवैलियम इलैटेरियम* तथा *ब्रायोनिया* प्रजाति के कड़ुवे पौधों से तैयार की जाती है। वैज्ञानिक साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि इस कुल की जो 850 जातियां संसार में पाई जाती हैं उन में से अभी तक लगभग 90 ज़ातियों में कड़ुवे रचक पाये गये हैं। दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया में इस कुल के कुछ पौधों के उपयोग से ढोरों में विष का असर होते हुये पाया गया है[2]।

कुकुरविटैसी कुल में कड़ुवाहट का निर्धारण केवल एक प्रभावशाली जीन द्वारा किया जाता है[3]। क्योंकि कड़ुवे और मीठे फलों की बाहरी आकृति में अन्तर नहीं होता, इसलिये बाहरी आकृति के आधार पर इन्हें पहचानना कठिन होता है। इस कारण ऐसे फलों के उपयोग से कभी भी शरीर में विष पहुंचने की दुर्घटना हो सकती है. यूरोप और अमेरिका में ऐसी दुर्घटनायें खीरों के फलों की ढेपियों की कड़वाहट से प्रायः हो जाया करती है[4]।

इस कुल के पौधों में पाये जाने वाले कड़ुवे तत्वों के व्यवस्थित अध्ययन[5] से पता चलता है कि ये कड़ुवे पदार्थ 37 जातियों के फलों में, 24 जातियों की जड़ों में और 8 जातियों की पत्तियों में विद्यमान है। अध्ययन से यह भी पता चला है कि ये तत्व कड़ुवी जातियों के पौधों में वृद्धि की सम्पूर्ण अवधि में पौधे के किसी न किसी अंग में अवश्य पाये जाते हैं। पौधों में इन कड़ुवे तत्वों की मात्रा उनकी परिस्थिति और उनकी वृद्धि के विभिन्न स्तरों पर भी निर्भर होती है।

प्रकृति में ये कड़ुवे पदार्थ ग्लाइकोसाइडों के एक जटिल मिश्रण के रूप में उपस्थिति होते हैं। इन तत्वों को इसी रूप में रासायनिक तौर से शुद्ध अवस्था में बिलगाने के प्रयत्न अभी तक सफल नहीं हुये हैं। पुराने वैज्ञानिक साहित्य में वर्णित जितने कड़ुवे तत्व हैं उनमें से **इलेटेरियम** आदि कुछ ही ऐसे तत्व हैं जो रासायनिक तौर से शुद्ध रूप में निकाले गये हैं। अन्य सब कड़ुवे तत्व या तो अभी उचित रीति से जांचे नहीं गये हैं अथवा वे दो या दो से अधिक पदार्थों के मिश्रण हैं। एन्सलीन[6], लेवी और विलनर[7] तथा अन्य वैज्ञानिकों[8] ने *कुकुरविटैसी* कुल की 64 कड़ुवी जातियों के पौधों से लगभग 14 कड़ुवे तत्व रासायनिक रूप से शुद्ध अवस्था में निकाले हैं और उनका नाम अस्थाई तौर पर *कुकुरविटैसीन* रखा है। वैथसैडा के नेशनल कैंसर इन्स्टीट्यूट ने इन कड़ुवे तत्वों के औषधि गुणों की परीक्षा करके इस बात का पता लगाया है कि इनमें से कुछ *कुकुरविटैसीन* पदार्थ अबुर्द या ट्यूमर जैसे भयानक रोग के, इलाज में इस्तेमाल किये जा सकते हैं[9]। इस खोज ने इन कड़ुवे तत्वों की ओर वैज्ञानिकों की रुचि को फिर से जागृत किया है।

लूफ्फा प्रजाति में सात जातियां हैं। इनमें से अभी तक तीन कड़ुवी जातियों *लूफ्फा आमरा*, वैर. *एकूटैंगुला*[10], *लू. सिलिन्ड्रिका*[11] और *लू. इजिप्टिओका*[12] के रासायनिक विश्लेषण से पता चलता है कि इनमें एक कड़ुवा पदार्थ जो *कुकुरविटैसीन बी* के रूप में पहचाना गया है, की 9 प्रति शत की मात्रा विद्यमान है। *लूफ्फा ग्रैविओलैंस* राक्स्ब. जिसे हिन्दी में कड़ुवी तुरई और संस्कृत में **वृहतफल** कहते हैं इसी प्रजाति की कड़वी जातियों में से एक है। यह पौधा उत्तर प्रदेश के मैदानी भाग में जंगली तौर पर बहुतायत से पाया जाता है। वैज्ञानिक साहित्य में इसके कड़ुवे फलों के रासायनिक रचकों का कहीं उल्लेख नहीं आता। अतः राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान की 'जंगली रूप में बहुतायत से उपलब्ध पौधों का उपयोग' नामक योजना के अन्तर्गत उसका रासायनिक अध्ययन करने का निश्चय किया गया।

वृहतफल के पूर्ण विकसित फलों के अभी तक किये गये अध्ययनों से पता चलता है कि फलों के मीजोकार्प, इस दशा में गूदा, में एक कड़ुवा तत्व लगभग 8 प्रति शत (सूखे पदार्थ की मात्रा पर) विद्यमान है। यह तत्व अपने द्रवण अंक, आप्टीकल रोटेशन, रासायनिक तथा भौतिक गुण धर्मों, अल्ट्रावायलेट स्पैक्ट्रा और क्रोमेटीग्राफीय व्यवहार के आधार पर *कुकुरविटैसीन बी* पाया गया है। इसके अतिरिक्त मीजोकार्प में एक दूसरा कड़ुवा तत्व, *कुकुरविटैसीन ई*, बहुत कम मात्रा में पाया जाता है। फलों के एक्सोकार्प, यहां छिलके, में *कुकुरविटैसीन बी*. मीजोकार्प की अपेक्षा कुछ कम मात्रा में होता है। *कुकुरविटैसीन बी* अभी तक इतनी अधिक मात्रा में किसी दूसरे पौधों से नहीं निकाला गया है।

कुकुरविटैसीन बी. और ई *कुकुरविटैसीन* वर्ग के कड़ुवे तत्वों के आरम्भिक पदार्थ माने जाते हैं। इसलिये, कि इस वर्ग के अन्य कड़ुवे तत्व इन्हीं दो पदार्थों से पौधों की एन्जाइम व्यवस्था की सहायता से बनते हैं। इस वर्ग के कड़ुवे तत्वों का आपस में घनिष्ट संबंध है। रासायनिक रूप से ये तत्व बहुत परिवर्तनशील हैं। इन तत्वों को प्रायः मीठा तथा कड़वी दोनों जाति के पौधों के फलों के रसों की सहायता से सरलता से एक दूसरे में परिवर्तित किया जा सकता है[13]। निष्क्रय कुकुरविटैसीन बी को एन्जाइम व्यवस्था के अतिरिक्त
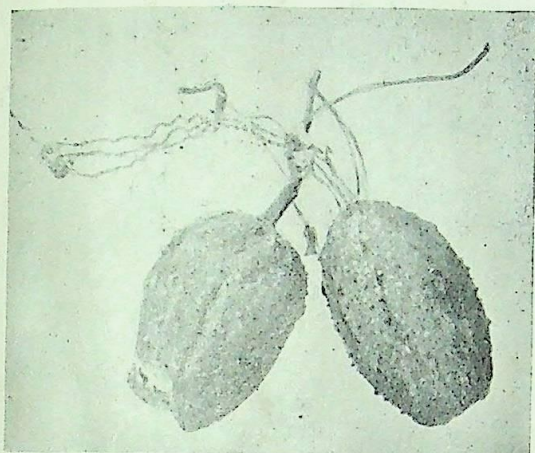
चित्र 1–कड़ुवी तुरई (*लूफ्फा गैविश्रोलस*) के फल

अन्य रासायनिक पदार्थों की सहायता से भी बड़ी सरलता से सक्रिय *कुकुरविटैसीन ई* में बदला जा सकता है[14]। यह एक ऐसा तथ्य है जो *कुकुरविटैसीन बी* के आधारभूत महत्व की ओर संकेत करता है। आजकल रासायनशास्त्री *कुकुरविटैसीन बी* से अन्य उपयोगी पदार्थ बनाने के प्रयत्न में लगे हुये हैं।

ऊपर लिखित तथ्यों के आधार पर यह आशा की जाती है कि वृहतफल, जो उत्तर प्रदेश के मैदानी भागों में जंगली तौर पर बहुतायत से मिलता है, जिसकी अभी तक कोई उपयोगिता नहीं है और जिसके पूर्ण विकसित फलों में *कुकुरविटैसीन बी* इतनी अधिक मात्रा में विद्यमान है, निकट भविष्य में एक उपयोगी पौधा सिद्ध हो सकता है।

लेखक गण वृहतफल के पौधे के भिन्न भिन्न भागों को उचित समय पर इकट्ठा करवाने के लिये श्री जे. जी. श्रीवास्तव के बड़े आभारी हैं।

संदर्भ

1. नंदकर्णी ए. के., **इंडियन मैटेरिका मैडिका,** जिल्द **1** (1954), 751–755
2. रिमिंग्टन, सी. एस., **अफ्री. ज. साइं., 30** (1933), 505
3. पाठक, जी. और सिंह, बी., **इंडियन ज. जैनेटि. 10** (1950), 28
4. स्टीन, डी. जी., **सा. अफ्रिकन. मैडि. ज., 24** (1950), 713
5. रेम., एस., एन्स्लीन, पी. आर., मीयूस, ए. डी. और वैसलस, जे. एच., **ज. साइं. फुड. एग्री., 12** (1957), 673
6. एन्स्लीन पी. आर., **ज. साइं. फुड. एग्री., 9** (1954), 410
7. लैवी, डी. और विलनर, डी., **ज. अमे. कैमि. सोसा., 80** (1958), 710
8. आइसेनहूट, जी. आर. और नोलर, सी. आर., **ज. आर्गे. कैमि, 23** (1958), 1948
9. लैवी, डी., **ज. अमे. कैमि. सोसा., 80** (1958), 707
10. निगम, एस. के., और शर्मा वी. एन., **ज. साइं. इंडस्ट्रि. रिसर्च., 18 बी** (1959), 536
11. टोरे दा. ला. एम. और सैन्टोस ए. सी., **रिव्यू. फिलिप. मैदि., 30** (1939), 168
12. रंगास्वामी, एस., और सम्बामूर्ति, के., **इंडियन ज. फार्मो., 16** (1954), 225
13. एन्स्लीन, पी. आर. और रेम, एस., **प्रोसा. लिनिअन सोसा.** (लंडन), (1958), 230
14. लैवी. डी., श्वो. वाई., विलनर, डी., एन्सलीन पी आर., ह्यूगो, जे. एम. और नोरटन. के.वी., **कैमिस्ट्री एंड इंडस्ट्री., (लंडन)** (1959), 951

उड़नशील सौगंधिक तेलों के कुछ नये संभाव्य स्रोत : भाग 2

सद्गोपाल
भारतीय मानक संस्था, नई दिल्ली

इस लेख में आठ ऐसे भारतीय सुगंधधारी उड़नशील तेल देने वाले पौधों के विवरण दिये गये हैं जिनका अध्ययन किया जा रहा है और जिनके व्यापारिक स्तर पर उपयोग की सम्भावना जान पड़ती है। इस लेख में इन पौधों के प्राप्ति स्थान, और जहां ज्ञात हो सका है वहां उनके उड़नशील तेलों के भौतिक-रासायनिक लक्षण और रासायनिक रचक भी दिये गये हैं।

Some Newer Potential Sources of Essential Oils : Part II by Sadgopal, Indian Standards Institution, New Delhi.

The paper gives a detailed account of 8 newly investigated Indian aromatic plants of potential economic value, including their occurrence, description of essential oils, their physico chemical properties and chemical composition, wherever available.

मुश्क दाना (*हिबिस्कस एबलमौशस* लिन.), मरुवा (*ओसीमम् बैसीलिकम* लिन.), देवदार (*सीड्रस देवदारा* लाउड) और कदम्ब (*ऐंथोसिफेलस कदम्ब* मिक.) के सौगन्धिक तेलों के संक्षिप्त विवरण इस लेख के पहले भाग में प्रकाशित किये जा चुके हैं[1]। इस इस लेख में उसी प्रकार 8 अन्य पौधों का विवरण दिया जा रहा है। इन पौधों में से कुछ के तेलों का उत्पादन किया जा रहा है और शेष के अध्ययनों से मालूम होता है कि उनका उपयोग भी व्यापारिक स्तर पर उड़नशील तेल प्राप्त करने के लिये किया जा सकता है।

चम्पा

चम्पा, *माइकेलिया चम्पका* लिन. (*मैग्नोलिएसी* कुल), एक ऊंचा और सदा हरा रहने वाला वृक्ष है। यह भारत के गर्म भागों, विशेषतया आसाम, बंगाल, मद्रास और उड़ीसा में पाया जाता है। इसके अत्यन्त सुन्दर सुनहरे पीले फूलों से एक भीनी-भीनी सुगन्ध आती है। इन फूलों से उड़नशील तेल प्राप्त करने के लिये भाप आसवन की विधि सफल नहीं होती। इस विधि से उपलब्ध तेल की मात्रा 0.07 प्रति शत से भी कम होती है। इन फूलों में एक आक्सीकारी किण्व (फफदावक) की उपस्थिति के कारण जो रासायनिक परिवर्तन होते हैं उनसे सुगंध की उत्तमता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इसलिये भारत में ताजे फूलों

चित्र 1—चम्पा (*माइकेलिया चम्पका* लिन.)

सारणी 1—चम्पा एब्सोल्यूट के भौतिक-रासायनिक लक्षण[2]

आपेक्षिक घनत्व, 30° सैं. पर	0.9620–0.9838
रिफ्रैक्टिव इंडैक्स 30° सैं. पर	1.4930–1.4960
आप्टीकल रोटेशन	+7° से +10° तक
एसिड मान (अधिकतम)	5.0
एस्टर मान	70.0–80.0
एस्टर मान, एसीटलीकरण के बाद	125.0–130.0
घुलनशीलता, आयतन से, 90 % अल्कोहल में	1 : 1

का उपयोग केवल इत्र बनाने के लिये ही किया जाता है।

फूलों को पैट्रोलियम ईथर से निसारित करने पर लगभग 0.18 प्रति शत कंक्रीट मिलता है और इसे आसवित करने से लगभग 54 प्रति शत एब्सोल्यूट प्राप्त होता है। इसके भौतिक रासायनिक लक्षण सारणी 1 में दिये जा रहे हैं। इस तेल की रासायनिक संरचना का अध्ययन किया जा रहा है। इस समय दो–तीन फर्में चम्पा के तेल के उत्पादन के सम्बन्ध में विचार कर रही हैं।

लिनैलो

लिनैलो, *बरसेरा डेलपेचिआना*, पोयस एक्स एंग्ल., (*बरसेरिएसी* कुल) पहले भारत में पैदा नहीं होता था, पर अब लगभग 30 वर्ष हुये अपने नैसर्गिक देश मैक्सिको से लाकर दक्षिण भारत में बंगलौर से 11 मील दूर टटगनी एस्टेट में लगाया गया है। यह पौधा बंगलौर की परिस्थितियों में इतना अच्छा पनपा है कि

सारणी 2—लिनैलो के छिलकों, पत्तियों और लकड़ी के उड़नशील तेलों के भौतिक-रासायनिक लक्षण[2]

लक्षण		*छिलकों का तेल*	*पत्तियों का तेल*	*लकड़ी का तेल*
आपेक्षिक घनत्व 25° सैं. पर		0.8900–0.9122	0.898–0.9416	0.8862–0.8984
रिफ्रैक्टिव इंडैक्स 25° सैं. पर		1.455–1.4660°	1.458–1.4620°	1.4538–1.4628°
आप्टीकल रोटेशन		–4°40′ से +2°44′	–1°34′से–8°40′	–0°50′ से +2°30′
एसिड मान (अधिकतम)		3	9	1
एस्टर मान		125–220	117–195	111–140
एस्टरमान, एसीटलीकरण के बाद		201–275	200–240	160–170
घुलनशीलता, आयतन से 70% अलकोहल में		2–3 और अधिक	4	5
कुल अल्कोहल (लिनैलूल के रूप में)	%	70–86	—	60–75
एस्टर (लिनालिलएसीटेट के रूप में)	%	25–45	60–70	34–45
मुक्त अल्कोहल (लिनालूल के रूप में)	%	45–50	2	—

पिछले दिनों में जब मैक्सिको के जंगलों में लिनैलो के पेड़ों को बहुत अधिक हानि पहुंची है तो बंगलौर ही संसार में लिनैलो के मूल्यवान तेल का एक मात्र कथनीय स्रोत रह गया है।

भारत में लिनैलो का उड़नशील तेल प्राप्त करने के लिये पत्तियों की थोड़ी मात्रा के अतिरिक्त, केवल प्रौढ़ फलों के ऊपर का छिलका ही इस्तेमाल किया जाता है। लकड़ी से तेल बिल्कुल आसवित नहीं किया जाता। लिनैलो के मैसूरी पौधे लगभग 5 वर्ष बाद काफी वार्षिक फल देने लगते हैं और ज्यों-ज्यों वृक्ष पुराने होते जाते हैं उनकी मात्रा बढ़ती जाती है। यह बात भारत में लिनैलो बागानों के तेज आर्थिक विकास और मैक्सिको में लिनैलो के निरन्तर ह्रास के संदर्भ में काफी महत्वपूर्ण है।

लिनैलो का मैसूरी तेल बहुत हल्का पीलापन लिये सफेद रंग का होता है। उसकी गंध बायद रोज फैमिल तेल के समान होती है। उसमें काफी गहराई और भारीपन तथा एक टिकाऊ और सुसंस्कृत लिली-रोज जैसी रमक पाई जाती है। भूसी से 14 से 18 प्रति शत तक तेल प्राप्त होता है। कोमल और हरी पत्तियां 0.15 से 0.25 प्रति शत तक एक चमकदार हरियालीमय पीला, सुहावनी गंध वाला तेल देती हैं। ताजे फूलों से भी भाप आसवन द्वारा 0.15 प्रति शत बढ़िया चमकदार पीला तेल प्राप्त होता है। वृक्ष के विभिन्न भागों से प्राप्त होने वाले तेल के गुणधर्म सारणी 2 में दिये जा रहे हैं।
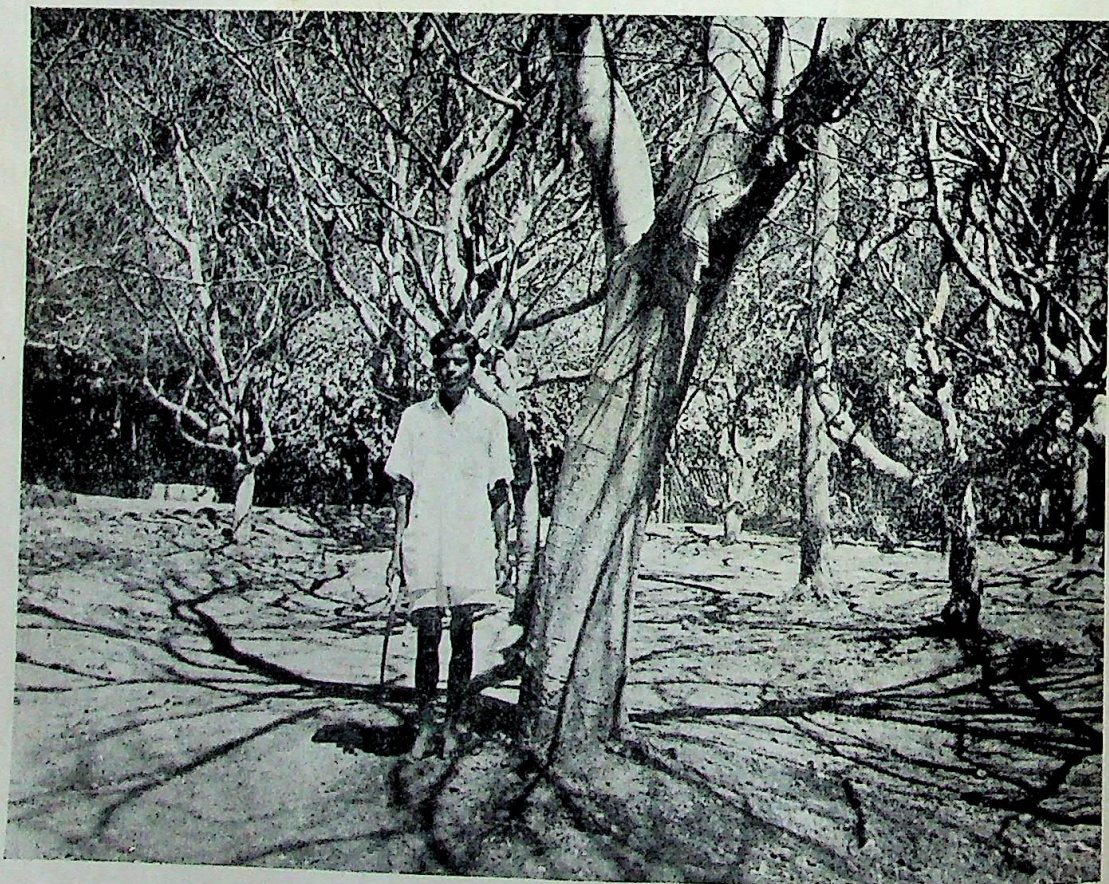
चित्र 2–लिनैलो बागान

शिमेल एण्ड कम्पनी[3] के द्वारा यह बताया जा चुका है कि फल के छिलकों के तेल को यदि आधुनिक डेग भभकों में सीधी भाप से शीघ्र आसवन द्वारा प्राप्त किया जाता है तो उसमें एस्टर का अंश अधिक होता है। ऐसा करने से महत्वपूर्ण लिनैलिल एसीटेट जलविच्छेदित नहीं होता। इस तेल का व्यापारिक उत्पादन योजनानुसार बढ़ाया जा रहा है।

नागर मोथा

नागर मोथा, *साइपरस स्केरिओसस*, (*साइपरेसी* कुल) की एक वर्षानुवर्षी चिकनी बूटी है। यह बंगाल, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और दक्षिण भारत के नम क्षेत्रों में खरपतवार की भांति बहुतायत से उगती है। इस पौधे की जड़ में गहरे कत्थई रंग की गन्धवान गांठें होती हैं जो देशी चिकित्सा प्रणालियों में काफी इस्तेमाल की जाती हैं। सुखाई हुई गांठों का भाप आसवन किये जाने पर 0.5 से 1.0 प्रति शत तक एक उड़नशील तेल प्राप्त होता है। इस उड़नशील तेल का आपेक्षिक घनत्व 30° सें. पर 0.9830–1.0125, रिफ्रैक्टिव इंडैक्स 30° सें. पर 1.5086–1.5150, आप्टीकल रोटेशन–6° से–12°, एसिड मान (अधिकतम) 10, एस्टर मान 10–25, एस्टर मान एसीटलीकरण के बाद 90–130, और घुलनशीलता, आयतन से, 90 प्रति शत अल्कोहल में 1:2 पाई गई है। इस तेल में 60 से 75 प्रति शत तक एक बाइसाइक्लिक सैस्क्वीटरपीन कीटोन, एल्फा-साइपरोन होता है। यह तेल देश में व्यापारिक पैमाने पर तैयार किया जाता है।

पारिजात

पारिजात, *निक्टैन्थस आरबोरट्रिसटिस* लिन. (*ओलिएसी* कुल) का वृक्ष है जो मध्य प्रदेश के वनों और उप–हिमालयी क्षेत्रों में पाया जाता है और देश भर में बोया भी जा सकता है। इसके फूल एक सुकुमार बेलनाकार गहरे नारंगी रंग की नली पर फैले हुये और बहुत सुगंधवान होते हैं। वे आमतौर से आधी रात के बाद खिलते हैं और सूर्य की पहली किरण
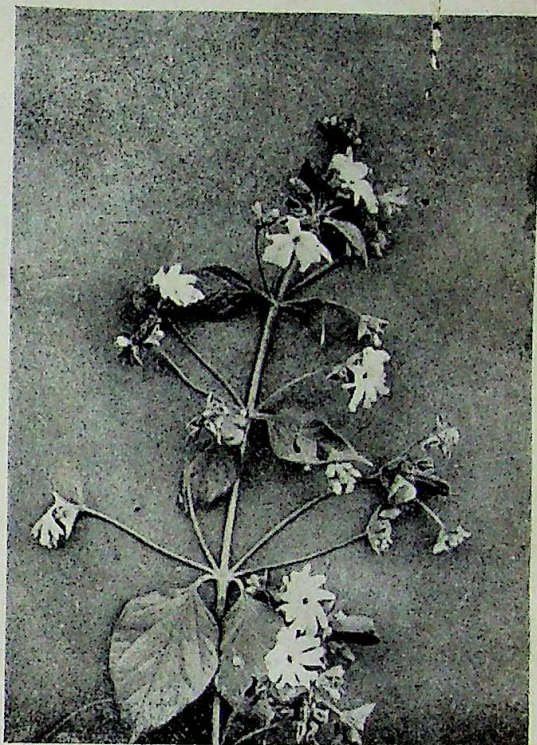
चित्र 3–पारिजात

निकलते ही धरती पर गिर पड़ते हैं। फूलों की सुगंध अत्यंत भीनी और शीघ्र उड़ जाने वाली होती है तथा दिन चढ़ने पर जल्दी ही नष्ट हो जाती है। फूलों का मौसम सितम्बर से अक्तूबर तक चलता है। पारिजात के फूल जल आसवन से 0.0045 से 0.006 प्रति शत तक एक उड़नशील तेल और घोलक निसारण से 0.06 से 0.085 प्रति शत तक कंक्रीट देते हैं। कंक्रीट भाप आसवित किये जाने पर 18 से 20 प्रति शत तेल देती है। कंक्रीट का द्रवांक 33–34° सें., जमनांक 30–31° सें., एसिड मान (अधिकतम) 24.0 और एस्टरमान 38–40 होता है। उड़नशील तेल के गुणधर्मों में आपेक्षिक घनत्व, 30° सें. पर, 0.9254, रिफ्रैक्टिव इंडैक्स 30° सें. पर 1.4840, आप्टीकल रोटेशन +2.3°, एसिड मान 8.0, एस्टर मान 65.0, एस्टर मान एसीटलीकरण के बाद 148.0 और घुलनशीलता, आयतन से 90 प्रति शत अल्कोहल में 1:1 पाई गई है। इस तेल की रासायनिकी का
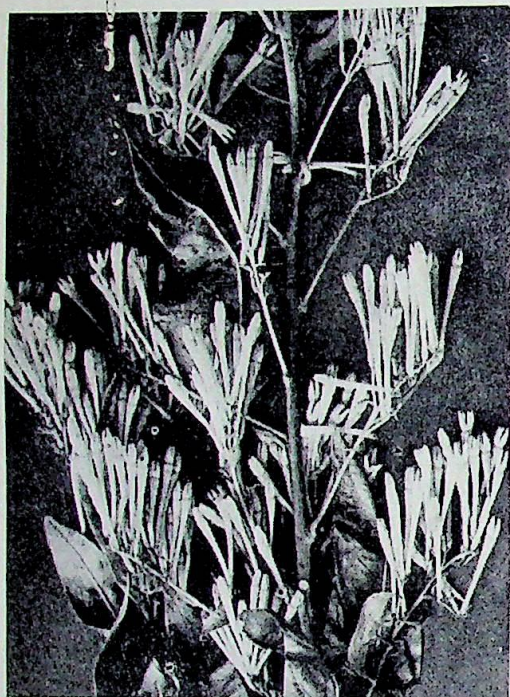
चित्र 4–रजनीगंधा

अध्ययन किया जा रहा है। इसका व्यापारिक उत्पादन अभी आरम्भ नहीं हुआ है।

रजनी गंधा

रजनी गंधा, *सेस्ट्रम नाक्टरनम* (*सोलेनेसी* कुल) की सदा बहार झाड़ी है और जन साधारण में रात की रानी कहलाती है। कुछ कुछ समय बाद यह वर्ष भर फूलती रहती है और रात के समय तेज तथा मोहक गंध देती है। इसके हरियाले सफेद कोमल फूल अप्रैल, जुलाई, सितम्बर और नवम्बर के महीनों में बहुतायत से मिलते हैं। फूलों के भाप आसवन से 0.014 से 0.025 प्रति शत तक एक उड़नशील तेल और घोलक निसारण से 0.3 से 0.5 प्रति शत तक एक कंक्रीट प्राप्त होता है। कंक्रीट का द्रवांक 49–50° सैं., जमनांक 44–45° सैं., एसिड मान 45–50 और एस्टर मान 108–110 पाया गया है। उड़नशील तेल का आपेक्षिक घनत्व, 30° सैं. पर, 0.9598, रिफ्रैक्टिव इंडैक्स 1.4900, आप्टीकल रोटेशन –1.5°, एसिड मान 8.5, एस्टर मान 72.0, एस्टर मान एसीटिलीकरण के बाद 145.0 और घुलनशीलता, आयतन से 90 प्रति शत अल्कोहल में 1:1 पाई गई है। अभी इसकी रासायनिक संरचना निर्धारण करने का प्रयत्न नहीं किया गया है और यह व्यापारिक पैमाने पर अभी तैयार नहीं किया जाता।

सोया

सोया, *एनेथम सोवा* डी. सी. रोक्सब., *उम्बेलीफेरी* कुल की एक वार्षिक चिकनी बूटी है जो भारत के सब गर्म और उपगर्म भागों में पाई जाती है। इस बूटी में तेज सुगन्ध होती है और यह व्यापक रूप से पाकशाला तथा मसालों में उपयोग की जाती है। ताजी हरी बूटी से 0.5 से 0.7 प्रति शत तक उड़नशील तेल मिलता। जबकि बीज 3 से 3.5 प्रति शत तक उड़नशील तेल देते हैं। इन तेलों के भौतिक–रासायनिक गुणधर्म सारणी 3 में दिये जा रहे हैं।

बूटी के तेल में डी–एलफा–फिलैंड्रीन 75 प्रति शत होता है और यह तेल उसके अत्युतम प्राकृतिक स्रोत के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। बीज के तेल में डी–लिमोनिन 9 प्रति शत, डी–कारवोन 40–45 प्रति शत, डिल–एपिग्रोल 40 प्रति शत और एनीथोल, यूजिनोल, थाइमोल आदि के रंच होते हैं। चक्रवर्ती और भट्टाचार्य[4] ने हाल में एक नये रचक डाइहाइड्रोकारवोन (9 प्रति शत) की उपस्थिति की सूचना दी है। यह तेल व्यापारिक पैमाने पर प्राप्य है।

गेंदे

गेंदे *कम्पोज़ीटी* कुल की *टैगेट्रीज़* प्रजाति की जातियां हैं। इनमें से *टै. पैटूला*, *टै. इरैक्टा*, *टै. ग्लैंडुलीफैरा* और *टै. माइनूटा* विशेष महत्वपूर्ण हैं। इन सब में सुन्दर सुनहरी तथा लाल और गहरी नारंगी झलकवाले फूल आते हैं। सजावट के लिये इन फूलों की मांग बहुत

सारणी 3–सोये की बूटी और बीज के उड़नशील तेलों के भौतिक–रासायनिक लक्षण[2]

लक्षण	बूटी का तेल	बीज का तेल
आपेक्षिक घनत्व 30° सैं. पर	0.8725–0.9220	0.9380–0.9825
रिफ्रैक्टिव इंडैक्स 30° स. पर	1.4860–1.4868	1.4905–1.5280
आप्टीकल रोटेशन	+70° से +85°	+50° से +65°
एसिड मान (अधिकतम)	2	2
एस्टर मान	40–45	35–42
एस्टर मान एसीटलीकरण के बाद	85–95	50–65
कारवोन %	10–15	40–45

अधिक है और मन्दिरों में भी चढ़ाये जाते हैं। इन कारणों से भारत भर में इसकी खेती की जाती है। इसके फूलों को आसवित करके इत्र बनाये जाते हैं। भारतीय गेंदे के फूलों और पत्तियों के उड़नशील तेल का वर्णन सबसे पहले सद्गोपाल द्वारा प्रकाशित किया गया था[5]।

इस पौधे का तेज सुगन्धिवान तेल केवल इसके फूलों में ही नहीं वरन् इसके तने और पत्तियों में भी होता है। जब यह पौधा प्रौढ़ अवस्था में काटा और आसवित किया जाता है तो उड़नशील तेल की सबसे अधिक मात्रा प्राप्त होती है। फूलों का तेल पीले से ललछहूं नारंगी रंग का होता है। और उसकी गंध तेज हायासिन्थ जैसी कीटोनी रमक की याद दिलाती है। तनों और पत्तियों का तेल हरियाली लिये हुए पीला सा होता है और उसकी गंध ताजगीमय, प्राकृतिक और सच्ची गेंदे की गंध–समान होती है। यदि फूल पत्ती का आसवन अधिक समय तक किया जाता है तो गंध खराब हो जाती है। इनफ्लोरेज और घोलक निसारण विधियों के उपयोग से भी ऐसे नतीजे नहीं प्राप्त हुए हैं जो आर्थिक रूप से सफल कहे जा सकें।

टै. इरैक्टा, *टै. पटूला* और *टै. ग्लैंडूलीफैरा* के फूल, तनों और पत्तियों से भाप आसवन द्वारा 3–4 घंटे में 0.3 से 0.7 प्रति शत तक उड़नशील तेल प्राप्त होता है। सबसे अधिक उपलब्धि कोमल पत्तियों से होती है। वायु और नमी के सम्पर्क से यह तेल शीघ्र ही पौलीमाराइज़ होता है। इसलिये इसे पात्रों में बंद करके अंधेरे, नमी रहित और ठंडे स्थान में रखा जाना चाहिये। *टै. ग्लैंडूलीफैरा* के तेल के भौतिक-रासायनिक गुणधर्म सारणी 4 में दिये जा रहे हैं। इस तेल में

सारणी 4–*टै. ग्लैंडूलीफैरा* के तेल के भौतिक-रासायनिक लक्षण[2]

लक्षण	मान
आपेक्षिक घनत्व 30° सैं. पर	0.9234–0.9540
रिफ्रैक्टिव इंडैक्स 30° सैं. पर	1.4970–1.5100
आप्टीकल रोटेशन	–8° से + 2°15′
एसिड मान (अधिकतम)	12.0
एस्टर मान	18.0–45.0
एस्टर मान, एसीटलीकरण के बाद	70.0–120.0
कुल कीटोन $C_{10}H_{16}O$ के रूप में (स्टिलमैन रीड विधि से)	25.0–48.0
घुलनशीलता, आयतन से, 90% अल्कोहल में	1:1.5

चित्र 5–वकुल

ओसीमीन 20–30, डी–लिमोनीन 3–4, टैगेटोन 45–55 और एक दूसरा कीटोन, $C_{10}H_{18}O$, 10 प्रति शत तक पाया जाता है। वैज्ञानिक साहित्य में जिन योरोपीय तेलों के सम्बन्ध में सामग्री प्रकाशित हुई है इसकी संरचना उनसे तुलनीय है। यह तेल अभी व्यापारिक पैमाने पर तैयार नहीं किया जाता।

मौलश्री (वकुल)

मौलश्री, *मिमूसौप्स एलंगी* लिन., *सैपोटेशी* कुल का एक बड़ा सदा बहार सजावटी वृक्ष है जो उत्तर प्रदेश, उड़ीसा और दक्षिण भारत के वनों में जंगली पाया जाता है और उत्तर भारत में बोया भी जाता है। इसके फूलों की सुन्दर सुगन्धि सूख जाने के बाद भी बहुत समय तक बनी रहती है। उत्तर भारत में फूल जुलाई से सितम्बर तक और दक्षिण भारत में मई से जून तक मिलते हैं। भारत में ये फूल आमतौर से इत्र उत्पादन के लिये आसवित किये जाते हैं।

ताजे सफेद फूलों के भाप आसवन से एक सुगन्धवान उड़नशील तेल 0.015 से 0.025 प्रति शत की मात्रा में मिलता है। इसका आपेक्षिक घनत्व 30° सैं. पर 0.9612, रिफ्रैक्टिव इंडैक्स 30° सैं. पर 1.4938, आप्टीकल रोटेशन +4.5°, एसिड मान (अधिकतम) 8, एस्टर मान 155.0, एसीट लीकरण के बाद एस्टर मान 235.0 और घुलनशीलता आयतन से, 90 प्रति शत अल्कोहल में 1:1 पायी गई है। साहित्य में इस तेल के रासायनिक अध्ययन का अभी कोई उल्लेख नहीं है और यह व्यापारिक स्तर पर तैयार नहीं किया जाता।

निष्कर्ष

भारत आज एक बड़ी औद्योगिक क्रांति की ओर अग्रसर हो रहा है और यह बात इसके महत्वपूर्ण उड़नशील तेल उद्योग पर भी लागू होती है। इस दृष्टि से भारत के त्रिभुजीय विस्तार प्रयत्न के उद्देश्य हैं कि (1) उड़नशील तेलों के अपने सुस्थापित प्राकृतिक स्रोतों का विकास करना, (2) नये उड़नशील तेलों के संभाव्य वनस्पति स्रोतों के आर्थिक उपयोग के लिये नये क्षेत्र खोजना और (3) देश के समुचित क्षेत्रों में सौगन्धिक तेलधारी विदेशी पौधों की स्थापना करना। वर्तमान लेख और इसके पहले भाग में इन तीनों उद्देश्यों की दृष्टि से सौगन्धिक तेल देने वाले 12 पौधों और उनके उड़नशील तेलों का संक्षिप्त सर्वेक्षण किया गया है। आशा है कि देश के उद्योगियों का ध्यान इस ओर आकर्षित होगा।

संदर्भ

1. सद्गोपाल, **विज्ञान प्रगति, 10** (1961), 4
2. सदगोपाल, **बैल्जिश शैमिश्चे एन्डूस्त्री, 24** (11) (1959), 1345
3. **बै. शिमेल एंड कं., 1932**, 44
4. चक्रवर्ती, के. के. और भट्टाचार्य, एस.सी., **इंडियन फार्मासिस्ट, 9** (7) (1954), 218
5. सदगोपाल, **सोप. परफ्यूम. कास्म., 12** (4), (1939), 329,358

डिब्बों में चूर्णों को निर्वात पैक करने की एक सरल विधि

इस लेख में चूर्णों को डिब्बों के अन्दर निर्वात में पैक करने की एक ऐसी विधि का विवरण दिया गया है जो प्रयोगशालाओं में सरलता से काम में लाई जा सकती है।

A Simple Device for Vacuum Packing of Powders in Cans.

A simple laboratory method of vacuum packing of powders in cans using a vacuum desiccator, vaccum pump and auto-transformer is described.

केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, मैसूर, में पैपेन को पैक करने के संबंध में जो अध्ययन किये गये हैं, उनमें निर्वात पैकिंग का प्रयोग करने के लिये एक सरल युक्ति काम में लाई गई है। इस कार्य के लिये 12 इंच व्यास का एक कांच का वैकुअम डैसीकेटर लिया गया। डैसीकेटर के ढक्कन के छेद में एक दो छेदवाली रबर की डाट लगाई गई। इसके एक छेद में होकर एक मोटा इन्सूलेटेड बिजली का केबल और दूसरे में होकर समकोण पर मुड़ी हुई एक कांच की नली डैसीकेटर के अन्दर पहुंचाई गई। कांच की नली को समुचित रबर की नली द्वारा एक निर्वातन पम्प से जोड़ दिया गया और उन दोनों के बीच में एक 3–वे स्टाप–काक लगाया गया। डैसीकेटर के भीतर बिजली के केबल के सिरों के बीच 100 वाट धारिता के एक नाइक्रोम तार का छोटा विद्युत कायल इस प्रकार लगाया गया कि उसे बिजली चालू करके गर्म किया जा सके। इस कायल को एक आटो–ट्रान्सफार्मर के द्वारा बिजली की लाइन से इस तरह जोड़ दिया गया कि उसे वोल्टेज में परिवर्तन करके धीरे–धीरे लाल गर्म किया जा सके। इस उपकरण का इस्तेमाल करके निम्नलिखित निर्वात सीलिंग की विधि काम में लाई गई।

एक पौंड जैम आकार के डिब्बे में पैपेन भरा गया और उसे डबल सीमर की सहायता से सील कर दिया गया। इसके बाद डिब्बे के एक सिरे पर एक नन्हा छेद किया गया। इस छेद के ऊपर झलाई के तार का एक छोटा टुकड़ा रख कर डिब्बे को डैसीकेटर के भीतर इस प्रकार बैठाया गया कि गर्म करने वाला कायल झलाई के तार के ऊपर टिक गया, पर उसने उसे दबा कर छेद को बंद नहीं किया। अब डैसीकेटर को 3–वे स्टाप–काक द्वारा निर्वात पम्प से जोड़ दिया गया और पम्प को 3–4 मिनिट चलाया गया। इतनी देर में डिब्बे के भीतर 26–27 इंच निर्वात हो जाता है। अब 3–वे स्टाप–काक की सहायता से डैसीकेटर और पम्प के बीच का संबंध जोड़ दिया गया। बिजली चालू की गई और आटो–ट्रान्सफार्मर की सहायता से कायल को धीरे–धीरे गर्म किया गया। इसके फलस्वरूप झलाई का तार गल गया और छेद अच्छी तरह बन्द हो गया। अब बिजली बन्द कर दी गई और 3–वे स्टाप–काक के द्वारा हवा को डैसीकेटर में जाने दिया गया। इससे डिब्बा ठण्डा हुआ। यद्यपि कायल के गर्म होने और डिब्बे के छेद में झाल लगने से डिब्बे और उसके माल के ताप में बहुत कम वृद्धि हुई थी। इस विधि का उपयोग करके जो अध्ययन किये गये हैं उनमें पाया गया कि डिब्बे के भीतर 26–27 इंच निर्वातन था। इसलिये इस उपकरण को प्रयोगशाला में चूर्णों को डिब्बा बन्द करने की निर्वात विधि के लिये बहुत संतोषजनक पाया गया। यद्यपि डिब्बे के भीतर पाया जाने वाला निर्वातन बहुत अधिक होता है, फिर भी अच्छा यह होगा कि चूर्ण को पहले नाइट्रोजन जैसी किसी निष्क्रिय गैस के वातावरण में पैक किया जाये, फिर निर्वातन किया जाये, और अन्त में निर्वात में डैसीकेटर के भीतर सील किया जाये। ऐसा करने

से डिब्बे के अन्दर आक्सीजन की काफी मात्रा रहने की सम्भावना बहुत कम होती है।

इस उपकरण को अनेक बार परखा गया है और संतोषजनक पाया गया है। किसी भी खाद्य प्रयोगशाला में साधारणतया जो सामान मौजूद होते हैं उससे इसे तैयार किया जा सकता है। ऐसा उपकरण विभिन्न आकारों और आकृतियों के पात्रों में मालों के निर्यात पैकिंग करने के लिये बहुत लाभदायक साबित होगा।

संदर्भ

सिद्दप्पा, जी. एस. और कृष्णमूर्ति, जी. वी., फुड साइं., **10** (1961), 51

खेत में से लोनी निकालने की एक विधि*

बी. फेदोरोव

लोनी धरती को लवण हीन बनाने के लिए उजबेकिस्तान में एक विधि निकाली गई है। इस विधि में खेत में लीकें बना कर और उनमें एक एक को छोड़ कर शेष में पानी भर दिया जाता है। इससे सिंचाईहीन नाली में लवणमय पानी निकलने लगता है और मुंडेरों पर लवण की तह आ जाती है। जब सिंचाई हीन नाली के पानी में लवण का आना बन्द हो जाता है तब इस सब को पानी की तेज धारा द्वारा खेत से बहा दिया जाता है।

A Method for Removing Salinity of Land by B. Fedorov.

A Method For removing the salinity from land has been worked out in Ujbekistan. Channels are prepared in the field and the alternate ones are filled with water. The water pressure induces saline solution to rise in unirrigated channels and deposits of saline material on the raised borders between two channels. When the water rising in the unirrigated channel is no more saline the field is washed with fast flowing water.

उजबेकिस्तान में लगभग आधी सिंचाई भूमि पर लोनी लगने के कारण फसल को बहुत हानि पहुंचती है। मिट्टी की इस लोनी को हटाने के लिये कई शताब्दियों से प्रयतन किये जा रहे हैं। पर अभी तक इन प्रयत्नों को विशेष सफल नहीं कहा जा सकता था। इन प्रयत्नों में खेत में 1.5–2.5 मीटर गहरी नालियां बनाई जाती हैं और उनमें पानी बहाया जाता है। इससे लोनी पानी में घुल कर दूर हो जाती है। पर यह लाभ थोड़े ही समय के लिये होता है। इस उपचार में पानी के साथ मिल कर जो लोनी बहती

* भारत में रूसी दूतावास के सूचना विभाग के सौजन्य से

है वह केवल नालियों के आस पास की मिट्टी की एक पतली परत से आती है। खेत के अधिकतर भाग में जब इस प्रकार मिट्टी धोई जाती है तो लवण पानी के दवाव के कारण धरती में अधिक गहरा चला जाता है और गर्मियों में जब धरातल के निकट का पानी वाष्प बन कर उड़ता है तो वह फिर ऊपर उठ आता है। यह क्रिया नई और पुरानी दोनों प्रकार की धरतियों में शीघ्र अथवा देर से होती हैं और दो तीन वर्ष में इतना लवण ऊपर आ जाता है कि पौधों को हानि पहुंचने लगती है।

लोनी को पौधों की जड़ों से नीचा रखने के लिये यह आवश्यक है कि खेत में पानी के स्तर को 2–2.5 मीटर की गहराई तक पहुँचा दिया जाये। इस उद्देश्य से कुछ क्षेत्रों के खेतों में 3.5–4 मीटर गहरी नालियां बनाई गई हैं। इससे किरोव नहर के दाहिने किनारे पर क्षुधित स्तेपीय प्रदेशों में मिट्टी को लोनी मुक्त रखने में सफलता प्राप्त की जा सकी है। पर अभी स्थिति यही है कि इन लोनीरोधक उपायों का प्रति वर्ष दोहराया जाना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में अधिक कारगर उपाय खोजने के सिलसिले में उजबेकिस्तान के अनुसंधान केन्द्रों में अध्ययन किये गये हैं। इनके फलस्वरूप एक ऐसा उपाय सामने आया है जिसके उपयोग से बार बार लोनी लगने की क्रिया को अन्य उपायों की अपेक्षा अधिक तेजी से नियंत्रित किया जा सकता है।

उजबेकिस्तानी प्रयोग

इन प्रयोगों में यह पाया गया है कि जब खेत में लीकें बनाकर और उनमें पानी बहा कर मिट्टी धोई जाती है तो कुछ लवण पानी के साथ बह जाता है और बाकी लीकों के बीच के मुंडेरों पर आकर सफेद पपड़ी के रूप में जम जाता है। जब दो लीकों के बीच की दूरी 0.6 मीटर से बढ़ा कर 1.2 मीटर कर दी जाती है तो इन मुंडेरों पर जमने वाले लवण की मात्रा बढ़ जाती है। यदि पानी एक–एक नाली छोड़ कर दिया जाता है तो इस जमने वाले लवण की मात्रा और भी अधिक हो जाती है। लीकों में पानी देना आरम्भ करने के लगभग चौबीस घंटे बाद मिट्टी की तहों में से पानी सीझ कर नीचे जाने और लवण के ऊपर रह जाने की क्रिया मंद पड़ जाती है। अब पानी की तेज धारा द्वारा धोकर मुंडेरों के ऊपर का लवण हटाया जा सकता है। नालियों की लम्बाई और मिट्टी में लवण की मात्रा जितनी ज्यादा होती है मुंडेरों पर से इस प्रकार पानी द्वारा बहाये हुये लवण की मात्रा उतनी ही अधिक होती है।

खेतों में से लवण को धोकर बहाने के पहले प्रयोग 1916 और 1926 में किये गये थे। पर इन अध्ययनों से अच्छे नतीजे नहीं प्राप्त हुये। कारण यह था कि पानी को खेत में भर दिया जाता था। इससे लवण खेत में पहले पहुँचने वाले पानी में घुल जाता था और उसके साथ धरती में सीझ कर भीतर चला जाता था।

यह पाया गया है कि सिंचाई के खेतों और नई तोड़ी हुई भूमि में लीकें बना कर मिट्टी को धोने की विधि खेतों में पानी भर देने की विधि की अपेक्षा अधिक सफल रहती है। जब लीकें काट कर सिंचाई की जाती है तब लवण का केवल एक भाग धरती में वापस जा पाता है। शेष सदा के लिये पानी के साथ बह जाता है। लवण के इन दोनों भागों को इच्छानुसार नियमित किया जा सकता है।

मिट्टी धोने की विधि

इन प्रयोगों के आधार पर उजबेकिस्तान में कपास के खेतों की मिट्टी को धोने के लिए जो तरीका इस्तेमाल किया जाता है उसमें शरद ऋतु में कपास के खेतों में से कटी हुई फसल की खूंटियां निकालने से पहले लीकों के द्वारा पानी दिया जाता है। यदि खूंटियां निकाली जा चुकती हैं तो 0.6 मीटर के अन्तर से नई लीकें काट दी जाती हैं इन लीकों में पानी की गहराई 10–15 सेंटीमीटर से अधिक नहीं रखी जाती।

लीकों में पानी को 24 या 36 घंटे तक रोक रखा जाता है और उसका स्तर नीचे नहीं जाने दिया जाता। इसके बाद खेत के जिस भाग में सबसे अधिक लोनी लगी होती है वहां की मुंडेरों पर पानी की तेज धारा प्रवाहित की जाती है, और इस पानी को, जिसमें लवण घुला हुआ होता है, पहले से तैयार की गई नालियों के रास्ते खेत से बाहर निकाल दिया जाता है। ये नालियां 20–30 सेंटीमीटर गहरी होती हैं और किसी खुली नाली या पानी के हौज से जुड़ी होती हैं।

यदि मिट्टी में लोनी अधिक होती है तो लीकों या नालियों की चौड़ाई 1–1.2 मीटर रखी जाती है। इनमें एक एक लीक को छोड़ कर पानी बहाया जाता है और आरम्भ में स्तर 10–15 सेंटीमीटर रखा जाता है। बीच की सूखी लीकों में पानी धरती में से ऊपर को आता है। इसमें अक्सर बहुत सा लवण घुला होता है। इसके बाद पानी वाली लीकों में पानी लबालब भर दिया जाता है। इस सिलसिले में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि पानी ऊपर से बह कर सूखी लीकों में न जाने पाये। 1 से 3 दिन के बाद धरती के भीतर से अत्यन्त खारा पानी रिस रिस कर सूखी लीकों में आने लगता है। इससे पहले लीक में उथले गड्हे भरते हैं और फिर यह पानी लीक में बहता हुआ उन गहरी नालियों में जा पहुंचता है जो निकास नालियों या पानी के हौज से जुड़ी होती है। पानी वाली लीकों में उस समय तक पानी भरा रखा जाता है जब तक कि बिना पानी वाली लीकों में से रिसने वाला पानी बिल्कुल लवण मुक्त नहीं हो जाता। इसका पता इस पानी को चखकर लगाया जा सकता है। जब पानी में लवण का स्वाद नहीं आता तो सभी लीकों को पानी से लबालब भर दिया जाता है और इस पानी को बड़ी तेजी से गहरी नालियों के रास्ते बहा दिया जाता है।

खेतों की मिट्टी धोने की यह विधि क्षुधित स्तेपीय प्रदेश के एक फार्म में बहुत कारगर साबित हुई है। पहले दस दिनों में खेत में से 10 से 20 टन तक लोनी प्रति दिन दूर की गयी। इसमें 3 से 6 टन तक क्लोरीन थी जो पौधों के लिए विशेष हानिकारी होती है। इसके बाद के कुछ दिनों में वह खारी पानी जो रिस रिस कर लीकों में आ गया था धीरे-धीरे बहा दिया गया और उसकी जगह ताजा पानी दिया गया। यह क्रिया 10 या 15 दिन बाद फिर दोहराई जानी चाहिये, पर सिंचाई के लिए जो लीकें पहले इस्तेमाल की जायें उन्हें बदल दिया जाना चाहिये।

लिथोपोन का उत्पादन

इस लेख में लिथोपोन बनानें की एक सामान्य विधि का विवरण दिया गया है।

Production of Lithopone.

A general method for the preparation of Lithopone is discussed in the article.

लिथोपोन एक प्रसिद्ध सफेद रंग है जो पोनोलिथ, एल्बालिथ, सनोलिथ, वैकटन ह्वाइट, जिंकोलिथ आदि नामों से भी जाना जाता है। सामान्य लिथोपोन में लगभग 66 प्रति शत बैरियम सल्फेट और 34 प्रति शत

जिंक सल्फाइड होता है। लिथोपोन बहुत से उद्योगों, विशेषतया रोग़न, छपाई की स्याही, लिनोलियम और रबर में इस्तेमाल किया जाता है। लगभग 10 विभिन्न प्रकार के लिथोपोन बनाये जाते हैं। लिथोपोन का मुख्य गुण यह है कि वह रासायनिक प्रतिक्रिया में भाग नहीं लेता और तेजाबी माध्यम में इस्तेमाल किया जा सकता है। पर सूर्य के प्रकाश से यह धीरे-धीरे विच्छेदित हो जाता है और इसलिये केवल इमारतों के भीतर ही काम में लाया जाता है। यद्यपि अनेक उपयोगों में इसका स्थान टाइटेनियम डायआक्साइड ने ले लिया है फिर भी कुछ उद्योगों का काम इसके बिना नहीं चलता।

लिथोपोन सबसे पहले 1874 में तैयार किया गया था। इसे बनाने के लिये बैराइटीज़, पत्थर-कोयले, जस्त और गंधक के तेजाब की आवश्यकता होती है। जस्त को छोड़ कर शेष तीनों वस्तुयें भारत में सरलता से प्राप्य हैं। लिथोपोन की निर्माण विधि में 5 क्रियायें की जाती हैं: (1) बैराइटीज को पत्थर-कोयले के साथ भूना जाता है। इससे जो माल तैयार होता है उसे पानी से धोया जाता है। इससे माल में उपस्थित बेरियम सल्फाइड पानी में घुल जाता है; (2) लकड़ी के बर्तनों में जस्त को गंधक के तेजाब में घोला जाता है और इस प्रकार जिंक सल्फेट का घोल तैयार किया जाता है; (3) दोनों घोलों को अवक्षेपण पात्रों मे मिलाते हैं जिससे कच्चा लिथोपोन अवक्षिप्त हो जाता है; (4) इसके अवक्षेप को छाना जाता है, सुखाया जाता है, समुचित भट्टी में भूना जाता है और पानी में बुझाया जाता है और (5) इसके बाद इसे धोकर, बाल मिलों में पीस कर, छान कर, सुखा कर और फिर पीस कर समापित कर लिया जाता है।

निर्माण विधि

बेरियम सल्फाइड का घोल–पिसे हुये 4 मैश के बैराइटीज़ को 30 प्रति शत पिसे हुए पत्थर-कोयले, कोक, या पिच के साथ अच्छी तरह मिलाया जाता है। मिश्रण को भूनने के लिये दो प्रकार की भट्टियां-चपटी तली की रिवरबरेटरी फरनेस और (ब्रुकनर) रोटेरी किल्न एक सी उपयोगी पाई गई हैं। जलाने के लिये आमतौर से अच्छी किस्म का उच्च उड़नशील बिटुमिन्स पत्थर-कोयला काम में लाया जाता है। प्रोड्यूसर गैस अथवा तेल भी इस्तेमाल किया जा सकता है। भट्टी में ताप 1,000-1,094° सें. होता है। इसमें बैराइटीज़ अवकरित होकर बेरियम सल्फाइड बन जाता है। भट्टी से जो माल निकलता है वह गर्द और बदबूदार होता है। क्योंकि सल्फाइड को हवा से बचाना महत्वपूर्ण है इसलिये उसे शीघ्र ही पानी में डुबो दिया जाता है। इस प्रकार जो गारा बनता है वह एक ट्यूब मिल में जाता है वहां वह बारीक पिसता है और फिर पानी की विपरीत दिशा से निरन्तर आने वाली धारा में खंगाला जाता है। इस धुलाई से जो बैरियम सल्फाइड मिलता है वह सूखे बैराइटीज़ के बोझ पर लगभग 20 प्रति शत होता है। जब इस घोल का घनत्व 170° बोमे हो जाता है तो लगभग शुद्ध बैरियम सल्फाइड के लम्बे पीले सुर्ख से केलास बनने लगते हैं। घोल को यथासम्भव गर्म रख कर केलासन की क्रिया को बहुत कुछ रोका जा सकता है। इस प्रकार जो बेरियम सल्फाइड मिलता है वह काफी शुद्ध होता है। यदि उसमें तांबा, लोहा अथवा मैंगनीज़ उपस्थित होते हैं तो उनसे अघुलनशील सल्फाइड बनते हैं। इसके बाद घोल का सान्द्रण ठीक किया जाता है और उसे भंडार टंकियों में भेज दिया जाता है। यहां थोड़ी-सी गाद नीचे बैठ जाती है। इस घोल में हाइड्रोसल्फाइड और हाइड्रेट के जो आपेक्षिक अनुपात उपस्थित होते हैं उनका अन्तिम रंग पदार्थ के गुण-धर्मों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

विदेशों में इस काम के लिये जस्त को भुने अयस्क अथवा जस्त की फूट से प्राप्त किया जाता है। क्योंकि भारत में न जस्त घनी अयस्क है और न जस्त को उपयोग करने वाले उद्योग, इसलिये यहां वह इन स्रोतों से प्राप्त नहीं किया जा सकता। जस्त को बाहर से

मंगाना होगा। इस काम के लिये बिजली की सहायता से शोधित किया हुआ जस्त अच्छा रहेगा। यद्यपि यह जस्त गंधक के तेजाब में कठिनता से घुलता है और इस पर लागत अधिक आयेगी फिर भी इसके इस्तेमाल से बाद में जिंक सल्फेट के घोल को साफ करने की कठिनाई से मुक्ति मिलेगी।

जिंक सल्फेट का घोल–ज़िक सल्फेट का घोल लकड़ी के ढोलों में अच्छे हवादार कमरे में तैयार किया जाता है। 66° बौमे का गंधक का तेजाब काम में लाया जाता है और यह क्रिया उस समय तक जारी रखी जाती है जब तक कि जस्त समस्त तेजाब का इस्तेमाल नही कर लेता। थोड़ी–थोड़ी देर बाद घोल की परीक्षा करके इसका पता लगाया जाता है। इसके बाद घोल को छाना जाता है। अवशेष को फेंक दिया जाता है और जिंक सल्फेट के घोल को शोधन टंकियों में भेज दिया जाता है। शोधन में दो क्रियायें होती हैं। पहली क्रिया में इसमें से लोहे और मैंग्नीज को अवक्षिप्त करने के लिये इसे क्लोरीन, ब्लीचिंग पाउडर, सोडियम क्लोरेट, पोटैशियम परमैंगनेट में से किसी एक अथवा अधिक से उपचारित किया जाता है और अवक्षेप को छान लिया जाता है। दूसरी क्रिया में जस्त की धूलि काम में लाई जाती है। इससे विद्युतविश्लेष्य क्रिया द्वारा निकेल, कैडमियम, थैलियम, सीसा, तांबा आदि जैसी भारी धातुयें अवक्षिप्त हो जाती हैं। शोधन के बाद घोल को छान लेते हैं और उसका सान्द्रण ठीक करने के बाद उसे पम्प द्वारा उन भंडार टंकियों में भेजते हैं जिनमें भाप की नालियां उसे खौलता रखती हैं।

अवक्षेपण– जिन टंकियों में अवक्षेपण किया जाता है वे लकड़ी की बनी होती है और इनमें धीरे–धीरे घूमने वाली रई लगी होती हैं। अवक्षेपण या तो एक साथ अथवा एक घोल को दूसरे में मिला कर किया जा सकता है। कोई भी विधि काम में लाई जाये आमतौर पर प्रतिक्रिया के अन्त में एक रचक दूसरे से अधिक होता है। इस काम के लिये बैरियम के घोल का आधिक्य ठीक समझा जाता है।

छानना और सुखाना– इस प्रकार जो कच्चा लिथोपोन प्राप्त होता है उसे आमतौर से एक ओलिवर फिल्टर में छाना जाता है और फिर सुखाने के लिये बटनर, टरबाइन अथवा रोटैरी प्रकार के सुखावक में से गुजारा जाता है।

यदि टंकी में डालने से पहले बैरियम सल्फाइड और जिंक सल्फेट के घोल समुचित सान्द्रण के नहीं होते तो अवक्षेप को छानना कठिन होता है। यदि सान्द्रण ठीक होते हैं तो भी बढ़िया से बढ़िया लिथोपोन अवक्षेप कठिनता से छनता है और उस पर अधिकतर धातुओं के सम्पर्क से धब्बे पड़ जाते हैं। सूखे माल में आमतौर पर 2–5 प्रति शत नमी होती है।

भूनना–यह क्रिया खड़ी अथवा पड़ी मफ़ल या रोटैरी भट्ठियों में की जाती है। इनमें ईंधन सीधा अथवा परोक्ष रूप से जलाया जाता है। अवक्षिप्त लिथोपोन को अधिकतम बढ़िया रंग बनाने के लिये उसे एक निश्चित ताप तक गर्म किया जाना चाहिये, निश्चित समय तक उस पर रखा जाना चाहिये और अन्त में पानी में बुझा कर अचानक ठण्डा कर दिया जाना चाहिये। इस सिलसिले में सर्वोत्तम ताप और उसकी अवधि इस बात पर निर्भर करती है कि लिथोपोन किस प्रकार तैयार किया गया है और वह किस काम के लिये उपयोग किया जायेगा। गर्म करने का ताप 600° सैं. और 800° सैं. के बीच में, आमतौर से 700° सैं. होता है। यदि माल अधिक गर्म हो जाता है तो जिंक सल्फाइड का कुछ भाग जिंक आक्साइड में परिवर्तित हो जाता है। इससे लिथोपोन के कणों की आकृति में भी अन्तर आ जाता है। इससे इस रंग की शक्ति और उपलब्धि घट जाती है तथा यह मोटा और दरदरा हो जाता है। यदि गर्मी कम रहती है तो रंग में भराव नहीं आता।

समापन–भुने हुए लिथोपोन को पानी में बुझाने से जो गारा मिलता है उसे बाल मिलों में पीसा जाता है, छाना जाता है और फिर जल बिलगावकों और धोवन

टंकियों को भेज दिया जाता है। इसे अब ओलिवर फिल्टर में छान लेते हैं। समापित लिथोपोन, कच्चे लिथोपोन की अपेक्षा बहुत आसानी से छन जाता है। जो थक्का मिलता है उसे मंद ताप पर टरबो सुखावक में इतना सुखाते हैं कि नमी की मात्रा 0.5 प्रति शत से अधिक नहीं रहती। समापित लिथोपोन को अब रेमंड मिल अथवा डबल केज प्रकार के डिसिन्टीग्रेटर में पीस लेते हैं। अन्तिम माल को 300 मेश में से गुजारा जाता है। यदि रंग में कुछ अन्तर होता है तो उसे आमतौर से अल्ट्रामैरीन ब्लू मिला कर ठीक कर लिया जाता है।

यदि 1 टन लिथोपोन तैयार करना होता है तो एक टन बैराइटीज, 6 हंडरवेट पत्थर–कोयले, (ईंधन के लिये) 6 हंडरवेट पत्थर–कोयले, साढ़े चार हंडरवेट जस्त और 10 हंडरवेट गंधक के तेजाब की आवश्यकता होती है। अच्छा लिथोपोन तैयार करने के लिये इन्हें सदा एक मानक गुणधर्म का होना चाहिये [सारंग, वी. जी., **पेन्ट इंडिया, 11** (1) (1961), 127]।

कार्बोहाइड्रेट, सैलूलोस और सैलूलोस उद्योगों पर गोष्ठी

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद की रासायनिक अनुसंधान समिति के तत्वावधान में कार्बोहाइड्रेट, सैलूलोस और सैलूलोस उद्योगों पर, 29–30 जनवरी, 1962, को अहमदबाद बुनाई उद्योग अनुसंधान एसोसिएशन, अहमदाबाद, में एक गोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है। गोष्ठी में नीचे दिये गये विषयों से संबंधित मौलिक अनुसंधान पत्रों पर विचार किया जायेगा: (1) कार्बोहाइड्रेटों की रासायनिकी और जैविकी–संश्लेषण; (2) प्राकृतिक सैलूलोस रेशों की भौतिकी और रासायनिकी; (3) सैलूलोस रेशों, कागज और रेओन लुगदी तथा सैलूलोस से प्राप्त होने वाले पदार्थों की रासायनिकी और प्रौद्योगिकी। इस गोष्ठी के संबंध में अधिक जानकारी डायरेक्टर, अहमदाबाद टैक्सटाइल इंडस्ट्रीज रिसर्च ऐसोसिएशन, अहमदाबाद–9, से प्राप्त की जा सकती है।

हमारी बिजली ; लेखक–रामचन्द्र तिवारी ; प्रकाशक-प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली ; 1959; पृष्ठ 66 ; मूल्य 75 नये पैसे ।

बिजली से हम सभी परिचित हैं। पर उसकी प्रकृति को कुछ थोड़े लोग ही समझते हैं। प्रस्तुत पुस्तिका में लेखक ने साधारण पाठक के लिये बिजली को उसके सरलतम रूप में उपस्थित करने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। पुस्तक में बारह अध्याय हैं। इनमें से पहले चार का सम्बन्ध बिजली की प्रकृति, उसके बनाने और उपयोग की जगह तक पहुंचाने से, अगले छः का बिजली के विभिन्न उपयोगों से, ग्यारहवें का भारत में बिजली के ऐतिहासिक विकास से और बारहवें का मनुष्य की सभ्यता पर बिजली के प्रभाव से है।

पहले अध्याय में घर्षण विद्युत के प्राकृतिक और मनुष्य द्वारा उत्पादन की चर्चा के संबंध में, धन और ऋण आवेश, चालक और अचालक पदार्थों, आकाशीय बिजली, चालकों के उपयोग, स्थिर बिजली और धारा बिजली, परमाणु के भेद आदि का विवेचन है और हमें ज्ञात होता है कि विद्युत आवेश परमाणुओं में इलैक्ट्रानों के विस्थापन के कारण उत्पन्न होते हैं। दूसरे अध्याय में जन्तु विद्युत, पाइरो बिजली, पाइज़ो बिजली, रासायनिक बिजली, प्रकाश बिजली, थर्मो बिजली के परिचय के साथ बड़े पैमाने पर बिजली बनाने की युक्ति का और उसे चलाने के लिये इस्तेमाल किये जाने वाले पत्थर-कोयले, तेल, परमाणु शक्ति, पानी की गति, वायु की गति का विवरण है। बिजली शक्ति का वह रूप है जो तारों की सहायता से दूर–दूर तक पहुंचाई जा सकती है। तीसरे अध्याय में बिजली नापने के लिये इस्तेमाल की जाने वाली ओह्म, एम्पियर, वोल्ट नामक इकाइयों की परिभाषा को समझाया गया है, ए.सी. और डी.सी. का अन्तर बताया गया है और बिजली को दूर ले जाने की क्रिया में ट्रांसफार्मर की प्रकृति और उपयोग पर प्रकाश डाला गया है।

चौथा अध्याय है : घर के भीतर। आज बिजली का उपयोग व्यापक होता जा रहा है। वह लाखों घरों में इस्तेमाल की जा रही है। हमें न केवल उसका मूल्य चुंकाना पड़ता है वरन् वह खतरनाक भी है। तनिक सी असावधानी से प्राण ले सकती है और घर में आग लगने का कारण बन सकती है। इस दृष्टि से यह अध्याय विशेष महत्वपूर्ण है। इसमें बिजली के तार, लीक की परीक्षा, बल्ब और पंखों में बिजली, स्विच प्लग और एडैप्टर; झटके–ए.सी. और डी.सी. से, फ्यूज़, शार्ट सरकिटिंग ; एक प्लग पाइंट पर कई उपकरण, फ्यूज़ लगाना, मीटर का फ्यूज ; बिजली का बिल–यूनिट और पावर लाइन उप शीर्षकों से विवेचन किया गया है और उन सावधानियों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है जो प्रत्येक बिजली इस्तेमाल करने वाले को बरतनी चाहियें।

बिजली जब विभिन्न परिस्थितियों में से गुजारी जाती है तो वह तरह–तरह के प्रभाव उत्पन्न करती है। पांचवे अध्याय में बिजली से उत्पन्न होने वाली गर्मी और प्रकाश के उपयोगों और उपकरणों का विवरण है। छटे में बिजली से पैदा होने वाली चुम्बक प्रेरणा और उसकी सहायता से किये जाने वाले कामों की चर्चा है। सातवें में विद्युत चुम्बकीय तरंगों और रेडियो, टेलीविज़न, रैडार का विवेचन है। आठवें में बिजली से

किये जाने वाले विद्युत–लेपन जैसे रासायनिक उपयोगों का वर्णन है तथा नवें में एक्स–किरण और दसवें में कुछ अन्य उपयोग दिये गये हैं।

डायनमों से बिजली तैयार करने का सिद्धान्त 1831 में विकसित हो गया था। पर बड़े पैमाने पर बिजली उत्पादन के योग्य मशीनें 1880 में तैयार हो सकीं। भारत में सबसे पहले बिजलीघर 1879 में दार्जिलिंग की नगरपालिका ने बनाया। यहां डायनमों चलाने के लिये एक पहाड़ी जल धारा का बहाव काम में लाया गया था और यह 130 किलोवाट बिजली तैयार कर सकता था। इसके बाद बिजली बनाने का काम फैलता गया। बिजली कानून बनाया गया और उसमें समय-समय पर आवश्यकता अनुसार परिवर्तन किये जाते रहे। आज देश में बिजली के विकास का काम केन्द्रीय जल और बिजली आयोग करता है। वह देश में बिजली उत्पादन के साधनों की खोज करता है और विभिन्न योजनाओं में तालमेल बैठाता है। 1959 के आरम्भ तक देश में बिजली के उत्पादन और उपयोग के क्षेत्रों में जो प्रगति हुई है और देश में इस उद्योग के विस्तार की जो सम्भावनायें हैं वे ग्यारहवें अध्याय में दी गई हैं। बारहवें और अन्तिम अध्याय में मनुष्य की सभ्यता के ऊपर बिजली के प्रभाव का विवेचन है। अपनी वितरण सुविधा के कारण कहा जा सकता है कि बिजली की धारा गांवों की पुनर्स्थापना का संदेश लेकर आई है।

पुस्तिका में बिजली जैसे जटिल विषय को इतनी सरलता और स्पष्टता के साथ उपस्थित करने के लिये लेखक बधाई का पात्र है। विद्यार्थियों को ही नहीं, उन सबको, जो किसी न किसी प्रकार बिजली के सम्पर्क में आते हैं, इस पुस्तिका को अवश्य पढ़ना चाहिये। इससे वे बिजली का उपयोग अधिक सावधानी और सफलता से कर सकेंगे।

एस. एल. अरोरा

मोहर की लाख

देश के व्यावसायिक ग्रौर ग्रौद्योगिक जीवन में तेजी से प्रगति होने के कारण मोहर लगाने की लाख की खपत में भी वृद्धि हो रही है। यह लाख छोटे पैमाने पर सरलता से तैयार की जा सकती है ग्रौर इसके लिये जो नुस्खा काम में लाया जा सकता है वह सारणी 1 में दिया जा रहा है।

मोहर की लाख बनाने की विधि में बैरोज़े ग्रौर चपड़े को इकट्ठा पीसा जाता है। मिश्रण को एक चौड़े बरतन में निरन्तर हिलाते हुये गर्म किया जाता है ग्रौर उसका ताप 160–165° सै. रखा जाता है। जब बैरोज़े ग्रौर चपड़े का मिश्रण एक रस हो जाता है तो पिसा हुग्रा जिप्सम डाला जाता है ग्रौर मिश्रण को ग्रच्छी तरह मिला लिया जाता है। लाख को जो रंग देना होता उसी के ग्रनुसार रंग भी मिश्रण में इसी समय मिला दिया जाता है। इसके बाद बरतन को गर्मी पर से हटा लिया जाता है ग्रौर ग्ररंड तथा तारपीन के तेल मिलाये जाते हैं। मिश्रण को ग्रच्छी तरह मिला कर एक रस कर लेते ग्रौर सांचों में डाल कर उसकी बत्तियां बना लेते हैं।

सारणी 1–मोहर की लाख का नुस्खा

रचक	भाग
रोज़िन (बैरोज़ा)	10
चपड़ा	36
जिप्सम	30
रंग	1
तारपीन का तेल	2
ग्ररंड का तेल	1

सपरेटे से केसीन

मक्खन निकाले हुये दूध में से केसीन ग्रलग करने के लिये पहले दूध को जमाया जाता है। यह काम या तो प्राकृतिक लैक्टिक एसिड की जमावट क्रिया द्वारा किया जाता है ग्रथवा इसके लिये दूध में तनु हाइड्रो-क्लोरिक, ऐसीटिक, सल्फ्यूरस ग्रादि एसिड ग्रथवा रेनेट मिलाते हैं।

जब लैक्टिक एसिड की प्राकृतिक जमावट विधि काम में लाई जाती है तो दूध को एक बरतन में रखा जाता है ग्रौर उसके ताप को 21.1° सै. के ग्रास पास ले ग्राते हैं। उसमें जामन डाल दिया जाता है ग्रौर दूध को उस समय तक जमने दिया जाता है जब तक कि सख्त दही नहीं बन जाती। ग्रब दही को काट या तोड़ कर उस समय तक गर्म करते हैं जब तक कि पकने के कारण वह कड़ा नहीं हो जाता। पानी को बरतन में से निकाल लिया जाता है ग्रौर दही के टुकड़ों को किनारों की ग्रोर इकट्ठा करके निचुड़ने दिया जाता है। इसके बाद इसे कई बार ठंडे पानी से धोया जाता है ग्रौर सुखावक के भीतर गर्म हवा से इतना सुखाया जाता है कि उसमें नमी की मात्रा 2–3 प्रति शत रह जाती है। सुखाने के लिये जो गर्म हवा काम में लाई जाती है उसका ताप 40–50° सें. होता है। दही के सूखे टुकड़ों को ग्रब मशीन में पीसा जाता है ग्रौर उचित रीति से पैक कर दिया जाता है। यही चूर्ण केसीन कहलाता है। ग्राम तौर पर 100 पौंड सपरेटा में से $2\frac{1}{2}$–$3\frac{1}{2}$ पौंड केसीन प्राप्त होता है।

रेनेट मिला कर जो केसीन प्राप्त की जाती है वह सब प्रकार के कामों में नहीं लाई जा सकती। उसका रंग गहरा होता है ग्रौर ग्रक्सर उसमें चिकनाई भी

अधिक पाई जाती है। रेनेट की सहायता से बनाई गई केसीन अधिकतर प्लास्टिक बनाने के काम में लाई जाती है जब कि प्राकृतिक अथवा ऊपर से मिलाये गये तेजाबों की सहायता से जो केसीन प्राप्त की जाती है उसे केसीन–ग्लु बनाने वाले अधिक पसंद करते हैं।

जूतों और तले के चमड़े की जलसहनीयता नापने की नई युक्ति

हैलसिंकी, फिनलैंड, में जूतों और तले के चमड़े को परखने के लिये एक मशीन बनायी गयी है जिसको "प्यादा मशीन" कहा गया है। जिस जूते को परखना होता है उसे एक खड़ी छड़ के नीचे लगे हुये फर्मे पर रखते हैं। यह छड़ मोटर चालित एक्सेन्ट्रिक की सहायता से मिनिट में 31.5 बार ऊपर नीचे होती है। यह सांचा खोखला होता है जिससे कि इसके भीतर एक निश्चित ताप पर पानी घुमाया जा सकता है। इससे जूते के भीतर का भाग गर्म हो जाता है और इस बात की परीक्षा की जा सकती है कि इन-सोल पसीने को कितने दिन तक बिना खराब हुये सहन कर सकेंगे। जब जूता नीचे आता है तो वह एक पात्र में एक विशेष सतह के सम्पर्क में आता हैं। इस पात्र की पेंदी से एक भारवान लीवर लगा होता है। इस भार को 30 और 89 किलोग्राम के बीच कहीं भी स्थिर किया जा सकता है। जितना भार स्थिर कर दिया जाता है जूते की तली पर उतना ही बोझ पड़ता है। पात्र की विशेष सतह सीमैन्ट, ईंट, एस्फाल्ट, रेत या किसी अन्य पदार्थ की बनाई जा सकती है। पात्र में इतना पानी रखा जाता है कि जूते की तली उसमें डूब सके। जूते के भीतर एक धातु प्लेट होती है जिसे एक रिले सरकिट से जोड़ा जाता है। इस सरकिट में 15×10^6 ओहम तक रेजिस्टेंस लगी होती है। इससे जैसे ही पानी जूते में पहले पहले प्रवेश करता है मशीन बंद हो जाती है। तले के चमड़े की परीक्षा के लिये फर्मे के स्थान पर 5×5 सैन्टीमीटर की धात्विक प्लेट लगाई जाती है जो थोड़े थोड़े समय बाद पात्र में रखे हुये चमड़े के टुकड़े पर बल लगाती है। इस मशीन के द्वारा चमड़े में जल प्रवेश के जो मान पाये गये हैं वे जूतों को पानी भरी सीमैन्ट की नाली में रखने से पाये गये मानों से बहुत अच्छा मेल खाते हैं।

गोल कृमि के उपचार के लिये पलास के बीज

जामनगर स्थिति देशी औषधियों के केन्द्रीय अनुसंधान संस्थान में गोल कृमि रोग के उपचार के संबंध में भारतीय औषधियों का मूल्याकंन किया जा रहा है। इस संबंध में पलास (*बूटिया मोनोस्परमा*) जिसे ढाक भी कहा जाता है, के बीजों का भी उपयोग किया गया है। प्रकाशित सूचना के अनुसार इन बीजों के काढ़े का उपयोग 17 रोगियों पर किया गया। इन रोगियों को छांटा नहीं गया था। ये उनमें से थे जो संस्थान के बाहरी रोगी विभाग में इलाज के लिये आये थे। इन रोगियों की आयु 3 से 58 वर्ष तक की थी और इनमें नर नारी दोनों थे काढ़ा बनाते समय पलास के बीजों का एक औंस चूर्ण लेकर उसे 8 औंस पानी में उस समय तक उबाला गया जब तक कि वह 1 औंस नहीं रह गया। इस काढ़े का उपचार प्रति तीन दिन के पश्चात् एक दिन का अन्तर लेकर उस समय तक दोहराया गया, जब तक रोगी ठीक नहीं हो गया। पहले तीन दिन के उपचार के बाद विष्ठा की नित्य परीक्षा करके देखा गया कि उसमें वयस्क कृमि हैं या या नहीं। जब उसमें कृमि नहीं पाये गये तो विष्ठा में उनके अण्डे खोजे गये। जब निरन्तर छः विष्टाओं के परीक्षण में अण्डे नहीं मिले तो उपचार बन्द कर दिया गया 17 रोगियों में से 13 को रोगहीन समझा गया। इस काढ़े के उपयोग से रोगियों पर कोई अन्य बुरा प्रभाव नहीं देखा गया। यह औषधि 30 दिन तक 3 दिन बाद एक दिन छोड़ कर इस उपचार के लिये दी जा सकती है। इससे किसी हानि की सम्भावना नहीं है। इस आधार पर समझा जाता है कि पलास के बीज गोल कृमि रोग के

उपचार के लिये एक सुरक्षित, प्रभावशाली और सस्ती औषधि हैं।

आन्ध्र प्रदेश में गुड़ के सर्वोत्तम गन्ने

आन्ध्र प्रदेश में जो गन्ना बोया जाता है उसका लगभग 60 प्रति शत गुड़ बनाने के काम में लाया जाता है। गुड़ बनाने का काम नवम्बर से अप्रैल तक किया जाता है और बने हुये गुड़ को पूरे वर्ष रखा जाता है। जून से नवम्बर तक समुद्रतट और दक्षिण के जिलों में मौसम नम होता है। गुड़ नमी बहुत अधिक सोखता है, इसलिये वर्षा के मौसम में उसे सीलने से से बचाकर रखना उत्पादकों और व्यापारियों के लिये कठिनाई उत्पन्न करता है। अनकपल्ले स्थित गन्ना अनुसंधान केन्द्र में इस संबंध में अध्ययन किये गये हैं। इन अध्ययनों में पाया गया है कि गुड़ वायुमण्डल से सब दशाओं में नमी नहीं सोखता। जब वायुमण्डल जलवाष्प से पूर्णतया संतप्त होता है तो अधिक नमी सोखी जाती है। यदि वायुमण्डल पूर्णतया संतृप्त नहीं होता तो नमी कम सोखी जाती है और जब इस आर्द्रता को धीरे-धीरे घटाते जाते है तो एक ऐसी स्थिति आ जाती हैं जब गुड़ न नमी सोखता है और न उसमें से नमी उड़ती है। गुड़ के किसी नमूने के लिये आर्द्रता की इस स्थिति को गुड़ की संतुलन आर्द्रता कहते हैं।

अनुसंधान केन्द्र में को. 527, को. 997, को. 1012 और को. 419 किस्मों के गन्नों से निकाले हुये गुड़ों की संतुलन आर्द्रता का निश्चयन किया गया है। और इन गुड़ों के रासायनिक रचकों का निश्चयन करके उनके साथ गुड़ों के नमी सोखने के गुण का संबंध स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। यह पाया गया है कि को 527 और को 997 से प्राप्त गुड़ निश्चित रूप से दूसरी दोनों किस्मों से प्राप्त होने वाले गुड़ों की अपेक्षा बढ़िया होते हैं। उनके गुड़ 77.0 प्रति शत आपेक्षिक आर्द्रता पर दूसरे गुड़ों की अपेक्षा कम नमी सोखते हैं। यदि गुड़ में सुक्रोस अर्थात गन्ने की चीनी का अंश अधिक होता है तो गुड़ बढ़िया होता है। यह भी पाया गया है कि गुड़ में अवकारी या रिडयूसिंग शकरों की मात्रा कम से कम होना गुड़ के लिये लाभकारी होता है [राव, टी. मल्लिखार्जुन और राव, एन. वी. मोहन, **आंध्र एग्री. ज., 8** (1961), 87]।

बिनौले से तेल निकालने की नई एसोटीन विधि

बिनौले से तेल निकालने की प्रचलित विधियों में जो खल प्राप्त होता है उसमें गोसीपाल नामक एक रंगीन जहरीला पदार्थ मौजूद होता है। खल में से इस पदार्थ को बिलगाना बिनौला प्रौद्योगिकी की एक बड़ी समस्या रही है। इटली की एक फर्म ने बिनौले से तेल निकालने की एक ऐसी विधि विकसित की है जिसके उपयोग से न केवल तेल अधिक अनुपात में प्राप्त होता है वरन् खल में गोसीपाल की मात्रा भी नहीं के बराबर रह जाती है।

नई विधि में निसारण के लिये ऐसीटोन इस्तेमाल किया जाता है (प्रवाह चित्र 1)। जो निसार प्राप्त होता है उसे इतना सांद्रित किया जाता है कि अवशेष में ऐसीटोन और तेल का अनुपात 2:3 हो जाता है। इस मिश्रण को ठंडे कास्टिक सोडे से उपचारित करते हैं और इसके बाद उसमें पानी मिलाते हैं। पानी साबुन और गोसीपोल के सोडियम लवण को लेकर अलग हो जाता है। विधि के अन्त में सैन्ट्रीफ्यूगल बिलगावक का इस्तेमाल किया जाता है जिससे तेल की हानि नहीं होती। तेल में शेष ऐसीटोन को गर्म करके अथवा अति ऊष्मित भाप की सहायता से अलग कर दिया जाता है।

पानी के मिश्रण में से ऐसीटोन को पुनः प्राप्त करने के लिये मिश्रण को 110° सैं. तक गर्म करके वाष्पों का शोधन करते हैं और साफ ऐसीटोन को फिर इस्तेमाल के लिये भेज दिया जाता है। जलीय घोल में साबुन, गोसीपाल तथा अन्य अपद्रव्य रह जाते हैं।
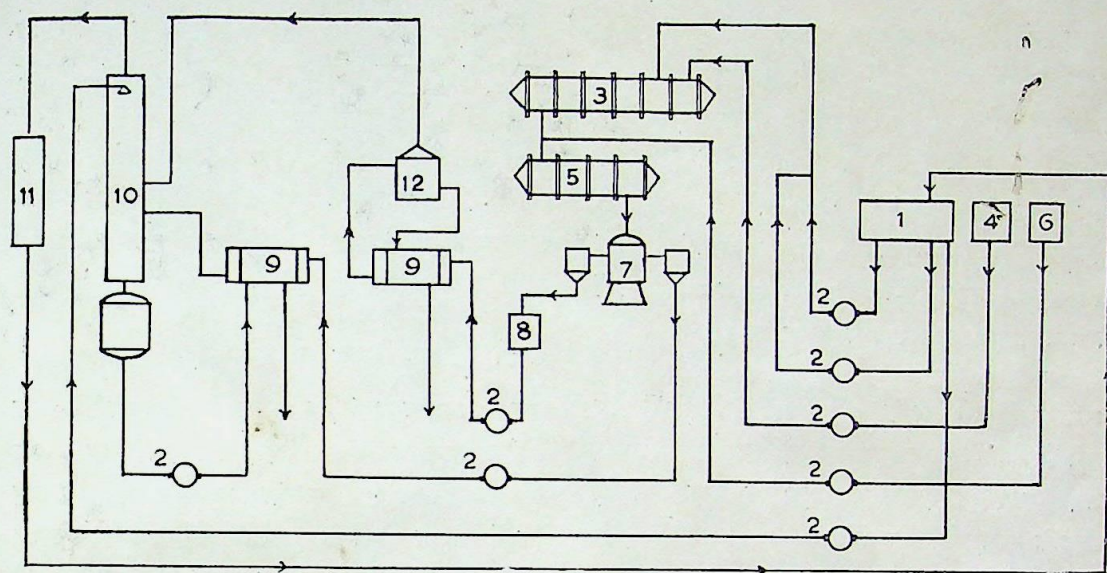
चित्र 1–बिनौले से तेल निकालने की ऐसीटोन विधि का प्रवाह चित्र

1. ऐसीटोन निसार; 2. पम्प; 3. शोधक; 4. कास्टिक सोडा; 5 तनुकारी; 6. गर्म पानी; 7. सैन्ट्रीफ्यूज बिलगावक; 8. तेल; 9. ऊष्मा विनिमय; 10. शोधन; 11. ऐसीटोन संघनन; 12. निरंतर ग्रासवन

इस घोल में से तेजाब ग्रवक्षेपरण की साधारण विधि से चिकने तेजाब पुन: प्राप्त किये जा सकते हैं।

ऐसीटोन बिनौलों का निर्जलीकरण कर देता है ग्रौर नमी सोखता है इसलिये इस प्रकार के कारखाने में ऐसीटोन की उचित शुद्धता बनाये रखने के लिये ऐसीटोन शोधन स्तम्भ होना ग्रावश्यक है।

इस नई विधि का उपयोग करके एक कारखानों में चलाया जा रहा है। इसमें प्रति दिन 60 टन बिनौलों से तेल निकाला जाता है। इस कारखाने में जिन उपकरणों की ग्रावश्यकता होती है वे निरन्तर उपचार की प्रचलित विधियों की ग्रपेक्षा बहुत सस्ते होते हैं। प्राप्त होने वाले तेल का रंग हल्का होता है ग्रौर उसे केवल एक बार में 0.2–0.5 प्रति शत ग्रर्थ से ब्लीच किया जा सकता है [**ज. ग्रमे. ग्रायल कैमि. सोसा., 38** (1961), 143]।

ज्वरमापी उत्पादन का लघु उद्योग

ज्वरमापी थर्मामीटर वर्तमान जीवन की ग्रनिवार्यताग्रों में से एक है। 1956 से पहले यह ग्रावश्यकता ग्रायात से पूरी की जाती थी। उस वर्ष ज्वरमापी बनाने के लिये ग्रमृतसर में एक कारखाना बनाया गया ग्रौर इसके बाद ज्वारमापी बनाने के लिए बम्बई, कलकत्ता ग्रौर दिल्ली में तीन उत्पादकों को लायसैंस दिये गये। इनके ग्रतिरिक्त सोलन ग्रौर जम्मू में एक–एक तथा देहरादून में दो और कारखाने बनाने पर विचार किया जा रहा है। सब कारखाने लघु उद्योग की परिभाषा के ग्रंतर्गत ग्राते हैं। ग्राज कल देश में ज्वरमापी बनाने की जो व्यवस्था है वह 2.75 लाख दर्जन ज्वरमापी तैयार कर सकती है। ग्रनुमान के ग्रनुसार 1965 में भारत में 2.71 दर्जन ज्वरमापियों की ग्रावश्यकता होगी। पर उत्पादन की दशा ग्रौर ज्वरमापियों के गुरण को देखते हुये यह समझा जाता है कि तीसरी पंचवर्षीय योजना में 1–1 लाख ज्वरमापी बनाने के 2 छोटे कारखाने ग्रौर लगाये जा सकते हैं। इस उद्योग को देश भर में फैलाने की दृष्टि से यह ग्रच्छा होगा कि ये कारखाने दक्षिरण में ऊटी ग्रथवा कोडाईकनाल में ग्रौर बिहार राज्य में पटना या रांची में बनाये जायें।

ज्वरमापियों के आयात पर 1957 से रोक लगा दी गई है। फिर भी, क्योंकि 50 रुपये अथवा कम के आयात के लिये आयात लायसैंस आवश्यक नहीं है इसलिये 1957 में 9.3 लाख रुपये के 1,50,417 दर्जन; 1958 में 3.13 लाख रुपये के 49,503 दर्जन तथा 1959 में 0.16 लाख रुपये के 1,865 दर्जन ज्वरमापी आयात किये गये थे। इन ज्वरमापियों का अधिकांश भाग जापान से आया था।

ज्वरमापी वैसे तो देश के सभी नगरों में बिकते हैं पर इनकी बिक्री के मुख्य केन्द्र बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास, पूना और अमृतसर हैं। ये नगर औषधि उद्योग के माल की मुख्य मंडियां हैं।

बाजार में दो किस्म के ज्वरमापी मिलते हैं: गोल नली वाले और चपटी नली वाले। लोग आमतौर से चपटी नली वाले ज्वरमापी पसंद करते हैं। उन्हें पकड़ने और उन पर ताप पढ़ने में सरलता होती है। भारतीय निर्माताओं को इसी प्रकार के ज्वरमापी बनाने चाहियें।

ज्वरमापी निर्माण उद्योग आरम्भ करने के लिये बड़ी पूंजी की आवश्यकता नहीं है। देश में अभी इस उद्योग के कारीगर कम हैं पर लघु उद्योगियों को उन्हें प्राप्त करना असम्भव नहीं है। ज्वरमापी बनाने के लिये पारा और केशिका (कैपीलरी नलियां) बुनियादी माल हैं। पारा भारत में नहीं मिलता, इसलिये उसे बाहर से मंगाना होगा। केशिका नलियां भी अभी देश में नहीं बनती और आयात की जाती हैं। देश में केशिका नलियां बनाने के लिए दो कारखानों को उत्पादन लायसैंस दिया गया है। आशा की जाती है कि उनका कार्य आरम्भ हो जाने से केशिका नलियां देश में उपलब्ध हो सकेंगी।

भारत में जो ज्वरमापी बनाये जा रहे हैं, कहा जाता है कि उन्हें समुचित रूप से पुराना नहीं किया जाता। ज्वरमापी मौसम की विविधता से प्रभावित न हों इसके लिये यह आवश्यक है कि उन्हें लगभग छः महीने सुरक्षित रखा रहने दिया जाये। अभी भारतीय ज्वरमापी आयात ज्वरमापियों के समान बढ़िया नहीं होते। अच्छा होगा कि यदि भारतीय उत्पादक अपने माल के गुण को सुधारने का प्रयत्न करें। ऐसा करने से उनका माल न केवल देश में ही सहर्ष स्वीकार किया जायेगा वरन् उसके निर्यात की भी अधिकाधिक सम्भावना होगी।

केन्द्रीय बीज निगम की स्थापना

भारत सरकार ने 5 करोड़ रुपये की पूंजी से एक केन्द्रीय बीज निगम स्थापित करने का निश्चय किया है। यह निगम एक कम्पनी के रूप में होगा। यह देश में उत्तम बीजों के उत्पादन का प्रबन्ध करेगा। इस काम के लिये यह आर्थिक सहायता और प्रौद्योगिक सलाह देगा, उत्पादन के लिये समुचित केन्द्र और बिक्री संगठनों की स्थापना करेगा तथा केन्द्रीय और राज्य सरकारों और अन्य हितों के सहयोग से प्रशिक्षण कार्यक्रम चलायेगा। केन्द्रीय बीज निगम एक स्वायत संस्था होगी और इसके डायरेक्टरों में भारत सरकार, बीज उद्योग और दूसरे हितों के प्रतिनिधि रहेंगे।

केन्द्रीय बीज निगम के नियंत्रण में एक बीज संगठन बनाया जाएगा जो बीजों के उत्पादन, यातायात और प्रमाणित बीजों के उत्पादन में लगे हुये लोगों को बीज देने का नियंत्रण करेगा। तीसरी पंचवर्षीय योजना में 500–500 एकड़ों की चार उत्पादन इकाइयां बनायी जायेंगी। इनमें से एक इकाई संकर मक्का और एक या दो संकर ज्वार के बीजों के उत्पादन के लिये होगी। इनमें गेंहूँ, मूंगफली और कपास तथा हरी खाद के बीज तैयार किये जायेंगे।

इस योजना के अंतर्गत प्रमाणित बीज एजेंसियां भी होंगी। ये यथासम्भव सहकारी समितियां होंगी। ये वास्तव में वे गांव होंगे जिनमें सब गांव वाले एक ही प्रकार के संकर अथवा दूसरे सुधरे हुये बीजों को तैयार करेंगे और उनका संगठन सहकारी

आधार पर होगा। क्योंकि बीजों के गुण धर्मों का नियंत्रण करने, उनके उत्पादन और बिक्री को नियमित करने तथा राज्यों के बीच उनके यातायात पर दृष्टि रखने के लिये समुचित बीज प्रमाणित करने वाली और बीज कानून को लागू करने वाली व्यवस्थाओं की आवश्यकता होगी, इसलिये प्रत्येक राज्य में इस प्रकार की समुचित व्यवस्था स्थापित की जायेगी।

नेवेली के निकट सिरेमिक केन्द्र

नेवेली में लिगनाइट निकालने के साथ साथ जो एक उपयोगी मिट्टी भी मिली है, उसको काम में लाने के विचार से मद्रास सरकार, वृद्दाचलम में सिरेमिक की एक औद्योगिक बस्ती बनाने जा रही है। राज्य सरकार ने तीसरी पंच वर्षीय योजना के अंतर्गत एक संस्थान बनाने के सम्बन्ध में सेवा सुविधायें देने के लिये 51 लाख रुपये की व्यवस्था की है। इस संस्थान में अनुसंधान के लिये एक प्रयोगशाला, अर्धव्यापारिक अवस्थाओं में परीक्षण और प्रयोग के लिये एक संयंत्र तथा अर्धशिक्षित बेरोजगारों के लिये एक प्रशिक्षण केन्द्र होगा। इस बस्ती में 35 इकाइयों की एक भट्टी बनायी जायेगी। प्रत्येक इकाई की धारिता अलग अलग होगी।

इस बीच में सरकारी सिरेमिक केन्द्र में 10 लाख रुपये की लागत से आधुनिक प्रकार की नलाकार भट्टी बनायी जायेगी और वहां का दैनिक उत्पादन 1 टन से बढ़ा कर 3 टन कर दिया जायेगा। अभी यहां सैनिटरी माल बनाने के लिये केरल की सफेद मिट्टी काम में लायी जाती है। जब नेवेली की मिट्टी मिलने लगेगी तो यह केन्द्र उसे इस्तेमाल करने लगेगा। यहां 8 लाख रुपये की लागत से नमक–ग्लेजित नलों का कारखाना बनाये जाने की सम्भावना भी है। इस कारखाने की दैनिक उत्पादन क्षमता 20 टन होगी। इस योजना के लिये मशीनें और सामान सम्भवतया पश्चिमी जर्मनी से मंगाया जायेगा।

आन्ध्र प्रदेश के तकनीकी शिक्षा और प्रशिक्षण बोर्ड के डिप्लोमें की मान्यता

शिल्पिक और व्यावसायिक योग्यता निर्धारण बोर्ड के सामान्य सिद्धान्त के अनुसार भारत सरकार ने शिल्पिक शिक्षा और प्रशिक्षिण के राजकीय बोर्ड, आन्ध्र प्रदेश, द्वारा ली जाने वाली दूर संचार (टैलीकम्यूनिकेशन) इंजीनियरी में लायसेंसियेटशिप डिप्लोमा कोर्स की अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को, दूर संचार इंजीनियरी क्षेत्र के निचले पदों पर नियुक्ति के लिये अस्थायी तौर पर मान्यता प्रदान करने का निश्चय किया है। यह मान्यता केवल सरकारी पौलीटैक्निक, हैदराबाद, के विद्यार्थियों के लिये ही लागू होगी।

ऐसीटिक एसिड का कारखाना

कोपरगांव तालुक, महाराष्ट्र, के वारीगांव के निकट ऐसीटिक एसिड के एक कारखाने में माल बनाने का काम आरम्भ किया गया है। यह कारखाना सरबर–वाडी और लक्ष्मीवाडी चीनी कारखानों से निकलने वाला लगभग चार लाख टन शीरा कच्चे माल के तौर पर इस्तेमाल करेगा। समझा जाता है कि यह कारखाना 15,000 रुपये का छः टन तेजाब प्रति दिन तैयार करेगा।

नये गोदाम

राज्य गोदाम निगम (स्टेट वेअर हाउसिंग कारपोरेशन) अब तक देश में 265 गोदाम बना चुकी है। इनमें लगभग 80 लाख मन माल रखा जा सकता है। इस वर्ष यह निगम 80 नये गोदाम बनायेगा। इस कार्यक्रम के अनुसार आसाम में 7, उत्तर प्रदेश में 12, महाराष्ट्र में 10, केरल में 7, मैसूर में 6, बंगाल में 6, उड़ीसा में 5, मद्रास में 5, पंजाब में 4, आन्ध्र प्रदेश में 4, राजस्थान में 3 और मध्य प्रदेश गुजरात और बिहार में 11, गोदाम बनाये जायेंगे।

उद्योगों को लायसेंस

विज्ञान प्रगति के पिछले अंक में देश के विभिन्न भागों में नये कारखाने लगाने अथवा पुराने कारखानों का विस्तार करने के लिये भारत सरकार के वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय ने उत्पादकों को जो लायसेंस दिये हैं उनमें से कुछ की सूचना दी गई थी। इस सम्बन्ध में कुछ और उद्योगों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं :

फर्म (1)	उत्पादक (2)	इकाई (3)	मात्रा (वार्षिक) (4)
मोटर कार			
बी. के. साहनी एंड सन्स, बम्बई	कार के पहिये	संख्या	50,000
	ट्रक के पहिये	संख्या	50,000
मशीन औजार			
एक्स–सैल–ग्रो–इंडिया लि., बम्बई	रैम टुरेट मिलिंग मशीन	संख्या	100
	कार्बाइड टूल ग्रांइडर	संख्या	100
	सरफेस ग्रांइडर	संख्या	100
	सेन्टर लेपिंग मशीनें	संख्या	50
मैसूर किलोस्कर लि., मैसूर	सिलिन्ड्रीकल ग्राइंडिंग मशीनें	संख्या	10
	हाई ड्यूटी इटरनल ग्रांइडर	संख्या	5
	हाइड्रोलिक सरफेस ग्राइंडर	संख्या	10
	टूल और कटर, ग्राइंडर	संख्या	15
बिनानी मैटल वर्कस लि., कलकत्ता	मिलिग मशीनें	संख्या	300
रासायनिक पदार्थ			
गौतम शांतिलाल नानावती, अहमदाबाद	बेरियम कार्बोनेट	टन	2,400
	बेरियम नाइट्रेट	टन	4,800
	बेरियम सल्फेट	टन	12,000
	बेरियम क्लोराइड	टन	4,800
इंडियन इलैक्ट्रोकैमिकल्स लि., बम्बई	रंगोलाइट (सोडियम सल्फो-क्सीलेट फार्मेलिडिहाइड)	टन	330
कलिंग ट्यूब्स लि., कलकत्ता	गंधक का तेजाब	टन	8,250
शम्भूनाथ एंड संस लि., अमृतसर	ऐलम फैरिक	टन	3,500
हिन्दुस्तान गैस कं. लि., कलकत्ता	आक्सीजन	लाख घन फुट	360
	घुली हुई एसिटिलीन	लाख घन फुट	120
औषधियां			
बायोलोजिकल प्रोडक्ट्स लि., हैदराबाद	*नक्स वोमिका* के अल्कालायड और स्ट्रिकनीन	कि.ग्रा.	9,000

(1)	(2)	(3)	(4)
रेनबाक्सी एंड कं. लि., नई दिल्ली	क्लोरएम्पिनिकोल और उसके लवण	कि.ग्रा.	500
कागज			
आन्ध्र पेपर मिल्स, राजमहेन्द्री	कागज	टन	15,000
	लुगदी	टन	15,000
क्वालिटी पेपर मिल्स, नई दिल्ली	टिसू गत्ते, बैन्क्स, इंडैक्स कार्ड और विशेष सामान	टन	1,800
	लुगदी	टन	1,800
जौली ब्रोस लि., बम्बई	नालीदार गत्ते आदि	टन	9,000
	लुगदी (कागज)	टन	9,000
ए. जी. सेनापति एंड कं., बंगलौर	विद्युत पृथ्थक्कारी बोर्ड	टन	840
	लुगदी	टन	840
ग्रेटर रेय्रोन ग्रेड पल्प एंड पेपर मिल्स, मैसूर	रेय्रोन ग्रेड लुगदी	टन	30,000
फायर ब्रिक्स और रिफ्रैक्ट्रीज़			
उत्तर रिफ्रेक्ट्रीज़, इलाहाबाद	फायर ब्रिक्स	टन	48,000
दामोदर वैली रिफ्रेक्ट्रीज़, कलकत्ता	फायर ब्रिक्स	टन	30,000
हिमालयन टाइल्स एंड मार्ब्ल्स लि., बम्बई	फायर ब्रिक्स	टन	6,000
	क्षारीय रिफ्रेक्ट्रीज़	टन	24,000
ओरिअन्टल सिरेमिक वर्कस, बम्बई	रिफ्रेक्ट्रीज़	टन	1,800
	पत्थर की बनियां	टन	1,200
	चीनी मिट्टी के बर्तन	टन	480

अबोहर में सिट्रस अनुसंधान केन्द्र

नींबू, संतरा, मुसम्मी आदि फल सिट्रस या निम्बु प्रजाति के कहलाते हैं। अबोहर और उसके आसपास के फिरोजपुर, भटिंडा, और हिसार जिलों के सूखे क्षेत्र सिंचाई की व्यवस्था हो जाने के बाद इस जाति के फलों, विशेषतया मीठे निम्बू, की खेती के लिये बहुत अधिक उपयुक्त पाये गये हैं। यहां की जलवायु दक्षिणी कैलीफोर्निया, जहाँ संतरे की खेती बहुतायत से होती है, के समान है गर्मियों के अप्रैल, मई, जून और जुलाई के महीनों में यहाँ ताप 115° और 118° फै. के बीच में रहता है। और सर्दियों में पाला नहीं पड़ता। वर्ष में औसतन 9–12 इंच वर्षा होती है, जो जुलाई, अगस्त और सितम्बर के दिनों में पड़ती है।

यहां की धरती भी सिट्रस के अनुकूल उपजाऊ, गहरी, चूनामय और निचुड़ी रहती है। नहरों से जो पानी सिंचाई के लिये आता है उसमें हानिकारी लवण नहीं पाये जाते।

इस क्षेत्र में सिट्रस की खेती यद्यपि लगभग 15 वर्ष पहले आरम्भ हो गई थी, पर उसमें तेजी पिछले 6 वर्षों में आई है। इस समय यहां 8,000 एकड़ से अधिक क्षेत्र में सिट्रस के बगीचे लगे हुये हैं। एक बगीचे का क्षेत्रफल 400 एकड़ तक है। इन बगीचों पर 1953

का वह कानून नहीं लागू होता जिसके अनुसार भूमिपतित्व की सीमा 30 एकड़ रखी गई है। अभी हाल में, फ्रूट ग्रोअर्स ग्रोवर्स फेडरेशन (फल उत्पादक संघ) के अनुरोध पर सिट्रस बगीचों की सिंचाई के लिये 45 क्यूसेक (घन फुट प्रति सेकिंड) पानी अलग निश्चित कर दिया गया है। इसके फलस्वरूप आशा की जाती है कि और 4,500 एकड़ों में सिट्रस जा सकेगा।

तीसरी पंच वर्षीय योजना में सिट्रस की खेती को और 30,000 एकड़ में फैलाने के विचार से 300 क्यूसेक पानी अलग रख देने की घोषणा की गई है। यह कार्यक्रम पूरा हो जाने पर समझा जाता है कि अबोहर का क्षेत्र देश का सबसे बड़ा सिट्रस उत्पादक क्षेत्र बन जायेगा।

फल उत्पादकों को सहायता देने के लिये सरकार ने एगमार्क की तरह संतरों को ग्रेडों में छांटने की एक योजना चलाई है। नीचे दर्जे फल अच्छे फलों से अलग कर लिये जायेंगे और रस, स्क्वैस तथा जैम बनाने के लिये इस्तेमाल किये जायेंगे।

केन्द्रीय सरकार ने इस फसल की बड़ी सम्भावनाय अनुभव करके अबोहर में एक सिट्रस अनुसंधान केन्द्र स्थापित करने की सम्मति दे दी है। इस सिलसिले में संसार भर से सिट्रस की बढ़िया जातियों को इकट्ठा करने का काम आरम्भ हो गया है। बीच के समय में सिट्रस उत्पादकों की सुविधा के लिये फ्रूट ग्रोअर्स फेडरेशन ने अबोहर में बढ़िया पौधें तैयार करने के लिये दो नर्सरियां खोली हैं और सरकारी नर्सरी में भी पौधों का उत्पादन बढ़ा दिया गया है।

एल्यूमीनियम और विशेष इस्पातों के उत्पादन में वृद्धि की योजना

तीसरी पंचवर्षीय योजना में एल्यूमीनियम उत्पादन का वार्षिक लक्ष्य 87,500 टन रखा गया है। इसके लिये इंडियन एल्यूमीनियम कम्पनी के हीराकुड के कारखाने में 10,000 टन और एल्यूमीनियम कारपोरेशन आफ इंडिया के कारखाने में 5 हजार टन वार्षिक उत्पादन के लिए विस्तार किया जायेगा, और रिहन्द में 20,000 टन, कोयना में 20,000 टन तथा सलेम में 10 हज़ार टन एल्यूमीनियम प्रति वर्ष तैयार करने के लिये कारखाने बनाए जायेंगे।

देश के औद्योगीकरण और बिजली उद्योग के विस्तार के साथ विद्युत-विश्लेष्य तांबे की मांग तेजी से बढ़ रही है और क्योंकि एल्यूमीनियम एक सीमा तक उसके स्थान में इस्तेमाल किया जा सकता है इस लिये यह समझा जाता है कि एल्यूमीनियम के उत्पादन लक्ष्य को बढ़ा कर 1.2 लाख टन कर दिया जायेगा।

देश में ताँबे और अभी एल्यूमीनियम की भांति लोहे की विशेष मिश्र धातुओं और औज़ार इस्पातों की भी कमी है। इसलिए उनके उत्पादन में वृद्धि करने के लिये तीसरी पंचवर्षीय योजना में उन्हें विशेष प्राथमिकता दी गई है। इस सिलसिले में मिश्र इस्पात का एक सरकारी कारखाना 50 करोड़ रुपये की लागत से दुर्गापुर में बनाया जा रहा है। आरम्भ में यह कारखाना 48 हजार टन समापित इस्पात बनायेगा। आशा की जाती है कि इसमें 1965 तक उत्पादन का कार्य आरम्भ हो जायेगा। इस कारखाने में इस बात की गुंजायश रखी गई है कि उसके उत्पादन को बढ़ाकर 3 लाख टन वार्षिक किया जा सके। इस कारखाने को जिस टूटे-फूटे लोहे की आवश्यकता होगी वह दुर्गापुर और कलकत्ते में प्राप्त हो सकेगा।

समझा जाता है कि दुर्गापुर के इस कारखाने से देश की विशेष इस्पातों की मांग पूरी नहीं हो सकेगी। इसलिये सरकार 3 कम्पनियों को विशेष इस्पात के उत्पादन के लिये लायसेंस देने की बात पर विचार इनके कर रही है। कारखाने सम्भवतया कलकत्ता, कानपुर औरबम्बई में बनाये जायेंगे।

इंजीनियरी की उच्च शिक्षा में परिवर्तन के सुझाव

भारत में ग्राजकल उच्च इंजीनियरी शिक्षण के लिये 29 संस्थायें काम कर रही हैं। सब मिला कर ये 70 स्नातकोत्तर या पोस्ट ग्रेजुएट कोर्स चलाती हैं। कुछ संस्थाओं में इन कोर्सों की संख्या 1 या 2 है, पर दूसरी संस्थाओं में इनकी संख्या 10 से 37 तक हैं। इन स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में व्यवस्था लाने के लिये 18 नवम्बर, 1959 को प्रो. एम. एस. ठक्कर की ग्रध्यक्षता में एक समिति बनाई गई थी। इस समिति ने ग्रपने 18 महीने के कार्यकाल में देश के विभिन्न भागों में 42 इंजीनियरी संस्थाओं का दौरा किया।

इस ग्रध्ययन के ग्राधार पर इस समिति ने जो सुझाव दिये हैं, उसके ग्रनुसार ग्रगले पांच वर्षों में इंजीनियरी प्रशिक्षण के क्षेत्र में स्नातकोत्तर डिप्लोमा, मास्टर की डिग्री ग्रौर पी–एच. डी. स्तर के ग्रनुसंधान कार्य की नियमित व्यवस्था की जानी चाहिये। बैचलर की डिग्री के बाद स्नातकोत्तर डिप्लोमा एक वर्ष के बाद किया जा सकेगा ग्रौर मास्टर की डिग्री दो वर्ष के बाद मिलेगी। पी–एच. डी. के लिये विद्यार्थी को किसी स्नातकोत्तर संस्था में कम से कम दो वर्ष काम करना ग्रावश्यक होगा ग्रौर इस डिग्री के लिये ग्रामतौर पर वे ही विद्यार्थी लिये जायेंगे जो मास्टर की डिग्री प्राप्त कर चुके होंगे। यदि कभी ग्रपवादरूप किसी विशेष योग्यता वाले ऐसे विद्यार्थी को, जिसने मास्टर की डिग्री प्राप्त न की हो, पी–एच. डी. के लिये लिया जायेगा तो उसे इस डिग्री के लिये कम से कम तीन वर्ष कार्य करना होगा। इस समिति के कार्यक्रम के ग्रनुसार तीसरी पंचवर्षीय योजना की ग्रवधि में मास्टर स्तर पर प्रशिक्षण के लिये 1250, डिप्लोमा के लिये 500 ग्रौर पी–एच. डी. के लिये 100 स्थानों की व्यवस्था की जायेगी। इस कार्यक्रम पर लगभग 10 करोड़ रुपये का खर्च ग्रनुमाना गया है।

इन प्रस्तावों को काम में लाने के लिये समिति का सुझाव है कि तकनीकी शिक्षण की ग्रखिल भारतीय परिषद के नीचे एक केन्द्रीय समिति बनाई जाये। यह सुझाया गया है कि इस काम के लिये तकनीकी शिक्षण की ग्रखिल भारतीय परिषद की स्नातकोत्तर ग्रध्ययन की स्थायी समिति को एक बोर्ड के रूप में फिर से संगठित किया जाये ग्रौर विभिन्न हितों को प्रतिनिधित्व देकर उसके सदस्यों की संख्या 20 कर दी जाये।

समिति का कथन है कि स्नातकोत्तर प्रशिक्षण में गुण ग्रौर स्तर की उच्चता की ग्रौर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। विद्यार्थियों की संख्या सीमित होनी चाहिये, जिससे शिक्षक प्रत्येक विद्यार्थी की ग्रोर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दे सकें। ग्रच्छे विद्यार्थी को इन स्नातकोत्तर ग्रध्ययनों की ग्रोर ग्राकर्षित करने के लिये विद्यार्थियों को 250 रुपये मासिक की छात्रवृत्ति दी जानी चाहिये। पी–एच. डी. के लिये, यदि विद्यार्थी के पास मास्टर की डिग्री हो तो, छात्रवृत्ति की रकम 400 रुपये प्रति मास होनी चाहिये।

समिति ने यह भी कहा है कि देश में जिन विषयों के लिये स्नातकोत्तर उच्च शिक्षा का प्रबन्ध हो जाये उनके लिये विद्यार्थियों को विदेशी सहायता कार्यक्रमों के ग्राधीन उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये विदेश न भेजा जाये। विदेश केवल उन्हीं विद्यार्थियों को भेजा जाये जो ऐसे विषयों में शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं जिनकी व्यवस्था देश में नहीं की जा सकी है।

फ्रैंक लायड राइट फाउन्डेशन के सर्टीफिकेट को मान्यता

भारत सरकार ने फ्रैंक लायड राइट फांउडेशन, संयुक्त राज्य ग्रमेरिका, द्वारा प्रदान किये जाने वाले सार्टीफिकेट ग्राफ फैलोशिप को भारतीय विश्वविद्यालय की ग्रार्कीटैक्चर डिग्री के समकक्ष मान्यता प्रदान करने का निश्चय किया है। यह मान्यता वास्तुशिल्पीय क्षेत्र में उच्च पदों पर नियुक्ति के लिये दी गई है।

दिल्ली में नाभिक विज्ञान संस्थान

दिल्ली में नाभिकीय उपचार और संबंधित विज्ञानों के संस्थान की आधार शिला रखते हुये 14 सितम्बर, 1961 को प्रतिरक्षा मंत्री श्री कृष्ण मेनन ने कहा कि आधुनिक विकास के क्षेत्र में पथप्रदर्शक के रूप में नाभिकीय विज्ञान को अध्ययन करने का काम बहुत महत्वपूर्ण है। प्रतिरक्षा मंत्रालय द्वारा स्थापित किया हुआ यह संस्थान न अस्पताल होगा और न मैडिकल कालेज। यह नाभिकीय विज्ञान के आधार पर लोगों में आधुनिक विकास के लिये एक पृष्ठभूमि तैयार करेगा। यह न केवल रेडियमधर्मी धूलि मिले हुये खाद्यों के विकिरण खतरों से बचाव ढूंढ़ने में सहायता करेगा वरन् चिकित्सा, खेती और उद्योगों के क्षेत्रों में भी नये विकासों को जांचने में हाथ बटायेगा।

कृष्य विज्ञान संस्थान

जून 5,1961, की एक सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया है कि तीसरी पंचवर्षीय योजना में देश में एक कृष्य विज्ञान संस्थान बनाया जायेगा। सरकार ने इस काम के लिये 60 लाख रुपया निश्चित किया है। यह संस्थान सम्भवतया नागपुर में होगा। यह भारत की कृषि योग्य भूमि का सर्वेक्षण और मूल्यांकन करेगा और धरतियों के विषय में वह आवश्यक सूचनायें देगा जिनके आधार पर देश में कृषि के विकास की प्रयोजनायें बनाई जायेंगी।

यह संस्थान कृष्य यांत्रिकी और कृषि विज्ञान के बारे में उच्च शिक्षा देने का कार्यक्रम चलायेगा देश के विभिन्न संस्थानों और विश्वविद्यालयों में जो कृषि संबंधी सैद्धान्तिक और व्यावहारिक अनुसंधान किये जा रहे हैं यह उनको बढायेगा और उनमें तालमेल बैठायेगा।

घी और तेल ग्रेडिंग के लिये प्रयोगशालायें

भारत सरकार ने निश्चय किया है कि तीसरी पंचवर्षीय योजना में देश के दक्षिणी क्षेत्र में घी और तेल के ग्रेडिंग के लिये दो प्रयोगशालायें बनायी जायेंगी। एक प्रयोगशाला गुन्टूर में और दूसरी कोयम्बतूर में होगी। इन प्रयोगशालाओं में इनके लिये उपयोगी नये से नये उपकरण लगाये जायेंगे। घी और तेल ग्रेडिंग का करने के अतिरिक्त ये प्रयोगशालायें इस क्षेत्र की दूसरी प्रयोगशालाओं के कार्य का नियंत्रण भी करेंगी। इस क्षेत्र में राज्य सरकारों और निजी लोगों की जो प्रयोगशालायें काम कर रही हैं उनका अधिकतर काम यह है कि वे घी और तेल पैक करने वालों को इन वस्तुओं के गुणों के बारे में सलाह दें।

गुजरात में मूंगफली पर अनुसंधान

गुजरात राज्य में 36,81,400 एकड़ में मूंगफली बोई जाती है जिससे 8,71,500 टन तेल बीज प्राप्त होते हैं। मूंगफली का उत्पादन बढ़ाने के लिये दो सुधरीं किस्में *ए एच*–32 और *समराला*–1 तैयार की गई हैं और अब सौराष्ट्र तथा कच्छ क्षेत्रों में किसानों को बोने के लिये बांटी जा रही हैं। इस फसल के सम्बन्ध में अनुवांशिकता और सस्य वैज्ञानिक काम मुख्य रूप से मूंगफली आनुसंधान केन्द्र, जूनागढ़, में किया जायगा। इस काम में सहायता देने के लिये अमरेली में एक उपकेन्द्र और तालोड़ में एक क्षेत्रीय केन्द्र होगा। पंचमहल जिले में देरोड और सूरत जिले में खोलवाड में भी दो उपकेन्द्र काम करेंगे। राज्य की इस महत्वपूर्ण फसल को हानि पहुँचाने वाले कीड़ों और रोगों का भी अध्ययन किया जायेगा और उनको नियंत्रित करने की तरकीबें निकाली जायेंगी।

बांस से स्प्रिंग और लट्ठों जैसी वस्तुओं का निर्माण

भारतीय पेटेण्ट नं० 64,541

केन्द्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, में बांस का उपयोग करके बैलगाड़ियों के स्प्रिंग और लट्ठे बनाने की विधि निकाली गई थी और पेटेण्ट करा ली गई थी। इसका पेटेण्ट नम्बर ऊपर दिया हुआ है। अब यह विधि वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद द्वारा बिना फीस सर्व साधारण के उपयोग के लिए खोल दी गई है।

देश में बांस बहुतायत से पाया जाता है और देहात में आसानी से तथा सस्ता मिल जाता है। बांस में कुछ लचक भी होती है। अकेला बांस अनेक उपयोगों के लिये कमज़ोर रहता है। इसलिए कई बांसों को जोड़ मजबूत लट्ठे और स्प्रिंग तैयार करने की विधि का विकास केन्द्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान में किया गया है। जोड़ने से पहले यदि बांस को संरक्षण के लिए क्रियाज़ोट जैसे किसी फफूंदनाशक में सिझा लिया जाता है तो उससे तैयार की गई वस्तुओं पर
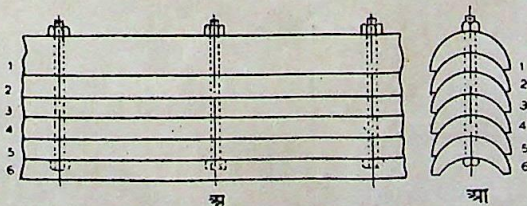
चित्र 1–बांस से लट्ठा
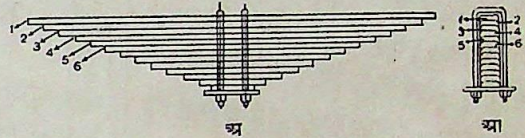
चित्र 2–बांस से स्प्रिंग

मौसम का प्रभाव कम पड़ता है और वे अधिक दिन चलती हैं।

इस विधि में बांस को बीच में से चीरा जाता है। चिरे हुए टुकड़ों के बीच में से गांठों को निकाल देते हैं जिससे एक लम्बी नाली सी बन जाती है। अब इस नाली को समुचित औजार की सहायता से इस प्रकार चौड़ा करते हैं कि एक नाली को औंधा रख कर जब उसी प्रकार दूसरी नाली जमाई जाती है तो ऊपर वाली नाली नीचे की नाली पर फंस कर बैठ जाती है। इन नालियों को एक दूसरे से जोड़ने का काम नर्म इस्पात के ढिबरी-कुलाबों से, क्लैम्पों से या किसी अन्य विधि से किया जाता है। इसके लिये समुचित प्रकार के एपोक्सी रेज़िनों, सिलीकोनों अथवा ठंडे रबर चिपकावकों जैसे वे पदार्थ इस्तेमाल किये जा सकते हैं जिनका विकास हाल में ही इंजीनियरी उपयोग के लिए किया गया है।

इस प्रकार बांस पर बांस जमाकर जो समर्थित रचना तैयार की जाती है उसे लट्ठे का अथवा स्प्रिंग
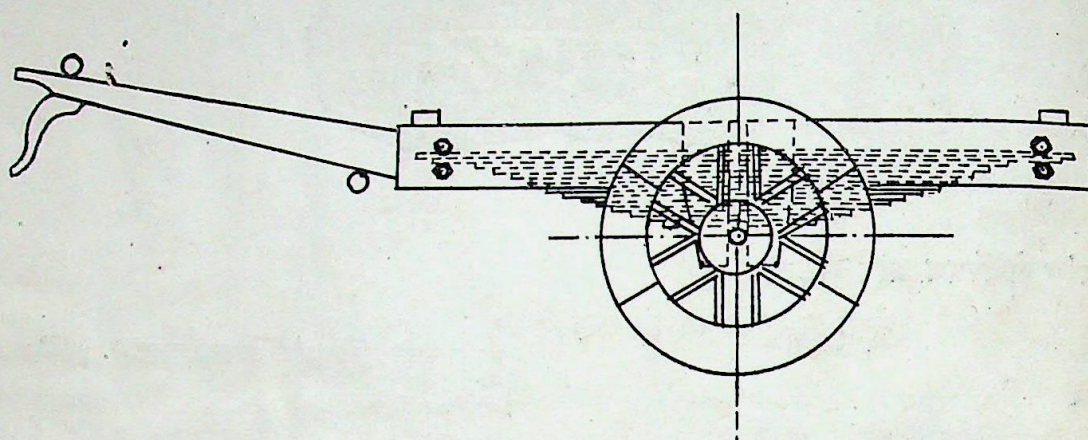
चित्र 3– बैलगाड़ी में बांस के स्प्रिग का उपयोग

का रूप दिया जा सकता है। स्प्रिग बैलगाड़ियों और तांगों में इस्तेमाल किये जा सकते हैं और पहाड़ी तथा जंगली क्षेत्रों में छोटी धाराओं पर कैंटीलीवर प्रकार के पुल बनाने के काम में लाये जा सकते हैं। बांस के लट्ठे सस्ते और देहाती मकानों में कड़ियों की भांति इस्तेमाल किये जा सकते हैं। इस सम्बन्ध में अधिक विस्तृत जानकारी डायरेक्टर, सैन्ट्रल रोड रिसर्च इंस्ट्यूट, नई दिल्ली–20, से प्राप्त की सकती है।

संदर्भ कोष

आंध्र एग्री. ज.	आंध्र एग्रीकलचरल जरनल (आंध्र की कृषि पत्रिका) बापतला, आंध्रप्रदेश
इंडियन ज. जेनेटि.	इंडियन जरनल आफ जेनेटिक्स एण्ड प्लान्ट ब्रीडिंग (अनुवांशकी और पौधा प्रजनन की भारतीय पत्रिका), नई दिल्ली
इंडियन ज. फार्मे.	इण्डियन जरनल आफ फार्मेसी (भेषजनिर्माणकी की भारतीय पत्रिका), बम्बई
इंडियन फार्मासिस्ट	इंडियन फार्मासिस्ट (भारतीय भेषज निर्माता), बम्बई
कैमिस्ट्री एण्ड इंडस्ट्री (लंडन)	कैमिस्ट्री एण्ड इंडस्ट्री (रासायनकी और उद्योग), लंडन
ज. अमे. आयल. कैमिस्ट. सोसा.	जरनल आफ अमेरिकन आयल कैमिस्ट्स सोसायटी (अमरिकन तेल रसायनज्ञों की सोसायटी की पत्रिका), शिकागो
ज. आर्गे. कैमिस्ट्री	जरनल आफ आर्गेनिक कैमिस्ट्री (जैविक रासायनकी की पत्रिका), वाशिंगटन
ज. साइं. इंडस्ट्रि. रिसर्च	जरनल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च (वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान की पत्रिका), नई दिल्ली
ज. साइं. फुड एग्री.	जरनल आफ साइंस आफ फुड एण्ड एग्रीकलचर (खाद्य और कृषि विज्ञान की पत्रिका), लंडन
पेन्ट इंडिया	पेन्ट इण्डिया, बम्बई
प्रोसी. लिनिअन सोसा. (लंडन)	प्रोसीडिंग्ज आफ दि लिनिअन सोसायटी आफ लंडन (लंडन की लिनिअन सोसायटी की कार्यवाही) लंडन
फुड साइं.	फुड साइंस (खाद्यों का विज्ञान), मैसूर
बै. शिमेल एण्ड को.	बैरिश्ते शिमेल एण्ड कम्पनी (शिमेल एण्ड कम्पनी की रिपोर्ट), न्यूयार्क
बैल्जिश कैमिश्चे एन्दूस्त्री	बैल्जिश कैमिश्चे एन्दूस्त्री (बेल्जियम का रासायनिक उद्योग), ब्रूसेल्स
रेवि. फिलिपा. मेदि.	रेविस्ता फिलिपिना द मेदिसिन्स उ फारमेसित्सा (फिलपीन की भेषजीय तथा भेषजनिर्माणकी की पत्रिका), मनीला
सा. अफ्रिकन मैडी. ज.	साऊथ अफ्रिकन मैडिकल जरनल (दक्षिण अफ्रिका की भेषजीय पत्रिका), केपटाऊन
सोप परफ्यूम. कास्म.	सोप, परफ्यूमरी एण्ड कास्मोटिक्स (साबुन सुगंध और अंगराग), लंडन

लेखकों से निवेदन

विज्ञान प्रगति में प्रकाशनार्थ ऐसे लेख आमंत्रित किये जाते हैं जिनका सम्बन्ध किसी वैज्ञानिक या औद्योगिक मौलिक अनुसंधान, विज्ञान या औद्योगिक विकास के किसी क्षेत्र के सर्वेक्षण अथवा किसी ऐसे विषय से हो जिससे विज्ञान के प्रसार में सहायता मिलती हो।

लेख अधिकारी व्यक्तियों की आलोचना के बाद प्रकाशित किये जाते हैं।

लेख कागज के एक ओर एक तिहाई हाशिया छोड़ कर साफ़ अक्षरों में लिखा जाना चाहिये। हाथ से लिखे हुये लेखों की एक प्रति भेजी जा सकती है पर टाइप किये हुये लेखों की दो प्रतियां आने से कार्यालय को विशेष सुविधा रहेगी। लेख अंग्रेजी में भी भेजे जा सकते हैं।

प्रत्येक लेख के आरम्भ में उसका सारांश, हिन्दी तथा अंग्रेजी में भी दिया जाना चाहिये। सारांश 200 शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिये और उसमें लेख के उद्देश्य तथा मुख्य निष्कर्षों का उल्लेख होना चाहिये।

लेखों में फुट नोट का उपयोग यथा सम्भव नहीं किया जाना चाहिये।

सारणियां : अलग कागजों पर टाइप की जानी चाहिये। उन पर क्रमानुसार संख्या दी जानी चाहिये और उनके शीर्षक संक्षिप्त होने चाहिये। सारणियों के स्तम्भ शीर्षक छोटे होने चाहिये। शून्य फल और जानकारी के अभाव को स्पष्ट दर्शाया जाना चाहिये। जो जानकारी सारणी के रूप में दी गई है उसे ग्राफ के रूप में दुबारा नहीं दिया जाना चाहिये।

चित्र : सब चित्रों पर क्रम संख्या और उनके शीर्षक होने चाहिये। रेखाचित्र इण्डियन इंक से सफ़ेद ड्राइंग के कागज (ब्रिसटल बोर्ड), सैलोफेन या ट्रेसिंग क्लोथ पर बने होने चाहिये। फोटोग्राफ ग्लौसी कागज पर होने चाहिये।

संदर्भ : साहित्य संदर्भ क्रमिक रूप से लेख के अन्त में दिये जाने चाहिये। लेख के अन्दर उनका संकेतांक पंक्ति के ऊपर की ओर लिखा जाना चाहिये। संदर्भ में लेखक का नाम, पत्रिका का (यथा सम्भव) पूरा नाम, जिल्द, (कोष्ठक में) वर्ष, और पृष्ठ संख्या दी जानी चाहिये। उदाहरण के तौर पर, राजन, के.एस. और गुप्ता, जे., **जरनल आफ साइंटिफिक एण्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च, 18 बी** (1959), 460–463।

पुनर्मुद्रण या रिप्रिण्ट : प्रत्येक लेख के 25 पुनर्मुद्रण बिना मूल्य दिये जाते हैं। अधिक प्रतियां लागत मात्र पर प्राप्त की जा सकती हैं।

CONTENTS

श्री वी. एन. शास्त्री, कौंसिल आफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली, द्वारा एशिया प्रेस, दिल्ली–6, में मुद्रित और प्रकाशित ।

Regd. No. D 464